

मोती बीए की आत्मकथा

भाग - दो



श्री मोती बीड़

संस्पादक- कृजनीकुमारउपाध्याय



मोती बीए की आत्मकथा भाग- दो

आत्मकथा मोती बीए



Title- MOTI B.A. KI AATMKATHA PART 02

Author's name: MOTI BA

Editor's name: ANJANI KUMAR UPADHYAY

Published by : ANJANI KUMAR UPADHYAY

Publisher's Address-

MOTI BA NIWAS, NANDANA WARD WEST
BARHAJ DEORIA

Printer's Details-

Faiz & Jaish Publishing Team

Nandana Pashchimi

Barhaj Deoria

U.P. 274601

Edition Details - I st Edition

ISBN: 978-93-100-0209-6

ISBN 978-93-100-0209-6



9 789310 002096 >

Copyright © Anjani Kumar Upadhyay

Email-

editorsampadanews@gmail.com

anjanikumarupadhyaya@gmail.com

editorsampada@sampadanews.in

Website

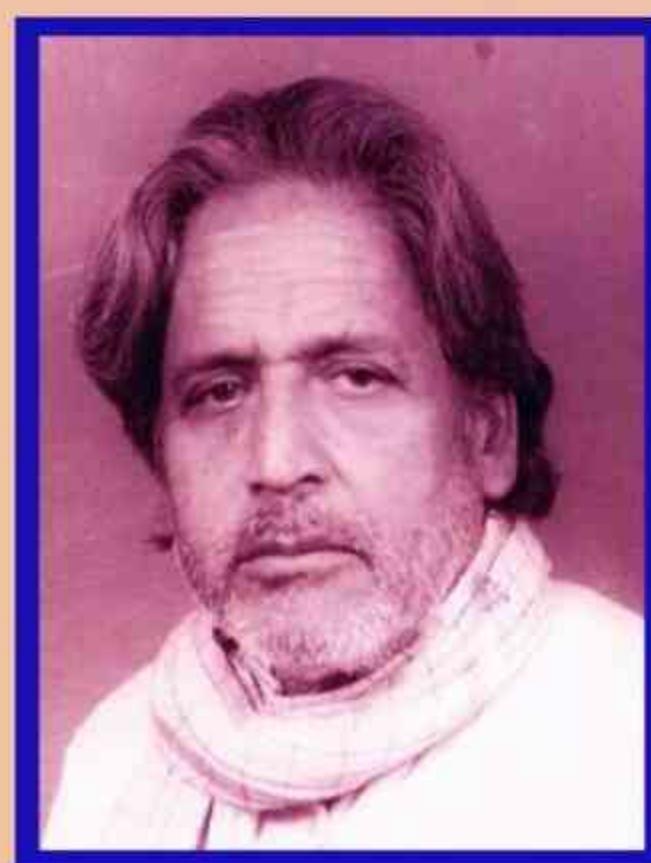
www.sampadanews24.blogspot.com

www.sampadanews.in





समर्पण



“रचना आपकी, प्रकाशन आपका, संकलन आपका”
मैंने तो बस, ‘आपकी बातों को’ आपके
चरणों में रख दिया है।
पूज्य पिता श्री मोती बीए को समर्पित।
—अंजनीकुमारउपाध्याय



आत्मकथा मोती बीए - मोती बीए का जीवन परिचय



जन्मतिथि : 01 अगस्त 1919 पुण्यतिथि : 18 जनवरी 2009

जन्मस्थान : ग्राम-बरेजी, डाकघर-तेलिया कला, जिला-देवरिया (उ.प्र.)

निवास स्थान : लक्ष्मी निवास, नन्दना पश्चिम, बरहज, देवरिया (उ.प्र.)

परिवार : पिता- श्री राधकृष्ण उपाध्याय, माता-श्रीमती कौशल्या देवी, सहोदर भ्राता- श्री जगदीश नारायण मालवीय, डॉ परमानन्द उपाध्याय, बहने-सुश्री शान्ती देवी, कान्ती देवी, पत्नी-श्रीमती लक्ष्मी देवी उपाध्याय, पुत्र-जवाहर लाल उपाध्याय, भालचन्द्र उपाध्याय, अंजनी कुमार उपाध्याय, पुत्रियाँ- सुश्री उर्मिला देवी, शारदा देवी।

शिक्षा एवं शैक्षणिक उपाधियाँ : बरहज से हाई स्कूल, गोरखपुर से इण्टर मीडिएट तथा वाराणसी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम. ए. (इतिहास), बी.टी. साहित्य रल।

सर्जनात्मक लेखन : 1936 से 2000 तक हिन्दी, भोजपुरी, उर्दू तथा अंग्रेजी में गीत, गजल, कविता, निबन्ध, अनुवाद, आत्मकथ्य इत्यादि प्रकाशित / अप्रकाशित कुल मिलाकर पचास से अधिक रचनाएँ।

पत्रकारिता : 1939 से 1943 तक अग्रगामी, आज, संसार, आर्यावर्त समाचार पत्रों के सम्पादकीय विभाग में मूर्धन्य पत्रकार बाबूराव विष्णु पराङ्कर तथा सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल के साथ सम्पादकीय विभाग में सहायक के रूप में कार्य।

स्वाधीनता सेनानी : 1943 में वाराणसी में चेतगंज थाना तथा सेण्ट्रल जेल में भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत नजरबन्द।

सिने गीतकार एवं कलाकार : 1944 से लेकर 1951 तक पंचोली आर्ट्स पिक्चर्स, लाहौर, फिल्मस्तान लिमिटेड, बम्बई, प्रकाश पिक्चर्स, बम्बई के गीतकार के रूप में 'नदिया के पार' (पुरानी, दिलीप कुमार, कामिनी कौशल), 'कैसे कहूँ', 'साजन', 'सिन्दूर', 'रिमझिम', 'सुभद्रा' इत्यादि अनेक फिल्मों में गीत लेखन। फिल्म 'साजन' का प्रसिद्ध गीत 'हमको तुम्हारा ही आसरा, तुम हमारे हो न हो' तथा 'नदिया के पार' के सभी गीतोंका भोजपुरी में सर्वप्रथम लेखन-'कठवा के नइया बनइहे मलहवा', 'मोरे राजा हो, ले चल नदिया के पार' इत्यादि गीतों के द्वारा पिफल्मों में भोजपुरी भाषा के प्रवर्तक। पुनः 1984-85 में भोजपुरी फिल्म 'गजब भइलें रामा' 'चम्पा चमेली', 'ठकुराइन' इत्यादि में गीत लेखन एवं अभिनय। कुल मिलाकर पैतीस से अधिक फिल्मों में गीत लेखन।

आकाशवाणी तथा दूरदर्शन : बम्बई, इलाहाबाद, लखनऊ, गोरखपुर से काव्य पाठ तथा अनेक स्वरचित लोक संगीतिकाओं का प्रसारण। अनेक कवि गोष्ठियों, कवि सम्मेलनों आयोजनों के माध्यम से काव्य पाठ एवं साहित्यिक रचनाओं का प्रचार प्रसार।



आत्मकथा मोती बी.ए - मोती बी.ए का जीवन परिचय



अध्यापन : 1952 से 1980 तक श्रीकृष्ण इण्टर कालेज, बरहज में इतिहास, अंग्रेजी एवं तर्क शास्त्र के प्रवक्ता के रूप में प्रतिष्ठित। वर्ष 1978 में उत्तर प्रदेश शासन (शिक्षा विभाग) द्वारा 'आदर्श अध्यापक' पुरस्कार से सम्मानित। अध्यापन काल में विद्यार्थियों के लाभार्थ हाई स्कूल / जूनियर हाई स्कूल पोइट्री तथा अन्य अंग्रेजी कविताओं का हिन्दी में पद्धानुवाद।

साहित्यिक रचनाएँ : हिन्दी कविता में तेइस प्रकाशित तथा सात अप्रकाशित कविता पुस्तकें, हिन्दीगद्य में 'इतिहास का दर्द', निबन्ध एवं आत्मकथ्य का लेखन, भोजपुरी में पाँच प्रकाशित एवं दो अप्रकाशित पुस्तकें। उर्दू में पाँच प्रकाशित तथा एक अप्रकाशित पुस्तक, अंग्रेजी में दो प्रकाशित तथा एक अप्रकाशित कविता पुस्तक तथा अंग्रेजी में शेक्सपीयर के सानेट्स तथा पाँच अन्य लम्बी अंग्रेजी कविताओं तथा कई अन्य छोटी अंग्रेजी कविताओं का हिन्दी एवं भोजपुरी में पद्धानुवाद। अब्राहम लिंकन (अंग्रेजी नाटक) का भोजपुरी में अनुवाद, कालिदास कृत 'मेघदूत' (संस्कृत) का भोजपुरी में पद्धानुवाद। इस प्रकार पचास से अधिक पुस्तकों का लेखन और अनुवाद। मोती बी.ए. 'ग्रन्थावली' में सम्मिलित पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ अन्य अप्रकाशित निबन्ध एवं कविताएँ अभी छपने के लिए शेष। भोजपुरी में सॉनेट एवं हाइकू विधा में लिखने वाले सर्वप्रथम रचनाकार।

सम्मान एवं पुरस्कार : दो दर्जन से अधिक सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त, जिसमें से कुछ प्रमुख हैं- उत्तर प्रदेश शासन द्वारा 'समिधा' पुस्तक के लिए राज्य साहित्यिक पुरस्कार (1973-74), उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा 'आदर्श अध्यापक' पुरस्कार (1978), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ द्वारा राहुल सांस्कृत्यायन पुरस्कार (1984), हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा 'भोजपुरी रत्न' उपाधि (1992), 'श्रुतिकीर्ति' सम्मान (1997), विश्वभोजपुरी सम्मेलन, भोपाल द्वारा 'सेतु' सम्मान (1998), साहित्यअकादमी नई दिल्ली द्वारा भोजपुरी के लिए प्रथम 'भाषा सम्मान' (2001-02), 'किसलय' सम्मान (2005), 'सरयूरत्न' सम्मान (2005)

अकादमिक/साहित्यिक स्वीकृति, अभिमत एवं मान्यताएँ : देश-विदेशकी अनेक लब्धप्रतिष्ठ पत्रिकाओं में परिचय एवं रचनाएँ प्रकाशित। विभिन्न प्रयोजनों हेतु सम्पादित अनेक पुस्तकोंमें रचनाएँ सम्मिलित एवं प्रकाशित। कई विश्वविद्यालयों के भोजपुरी लोक साहित्य विषयक पाठ्यक्रम में रचनाएँ सम्मिलित। विश्वविद्यालयों में मोती बी.ए.के साहित्य पर पी.एच.डी. उपाधि हेतु कई शोध प्रबन्ध स्वीकृत। वर्ष 1999 में डॉ शैलेन्द्र कुमार त्रिपाठी (शान्ति निकेतन) द्वारा मोती बी. ए. की प्रतिनिधि कविताओं का सम्पादन 'आग और अनुराग' पुस्तक





के नाम से रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा (मध्य प्रदेश) द्वारा प्रकाशित। अखिल भारतीय विक्रम परिषद काशी द्वारा वर्ष 1972 में प्रकाशित एवं आचार्य सीताराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'तुलसी ग्रन्थावली' (द्वितीय खण्ड) के व्यवस्थापक मण्डल के सदस्य रूप में कार्य। प्रसिद्ध साहित्यकार सर्वश्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, हरिवंश राय 'बच्चन', विशम्भर 'मानव', रामबली पाण्डेय, श्याम नारायण पाण्डेय, डॉ रामचन्द्र तिवारी, डॉ प्रताप सिंह तथा कई अन्य साहित्यकारों द्वारा रचनाएँ समालोचित, प्रशंसित एवं सम्मानित। मोती बी.ए की रचनाओं के विषय में कुछ विद्वानों की सम्मतियाँ।

साहित्य अकादमी (भारत सरकार) द्वारा जारी संक्षिप्त परिचय

Born in 1919, in Bareji Village, Dist. Deoria, Uttar Pradesh, Moti B.A. is an MA, BT and Sahitya Ratan. He knows Hindi, English and Urdu. He was associated with the editorial departments of *Agrami*, *Aaj Sansar* and *Aryavrat* in Benares from 1939 to 1943. In 1943 under the Indian Security Act he was put under house-arrest in Benares Central Jail. He joined the Shrikrishna Intermediate College, Barhaj, in 1952 as a lecturer and retired from there in 1980. He has more than a dozen original works in Bhojpuri and half-a-dozen books translated from English and Sanskrit into Bhojpuri. His published works include *Pratibimbini*, *Ashvamedh Yag*, *Samidha*, *Kavi aur Kavita*, *Madhutrishna*, *Badlika*, *Ansu Dube Geet*, *Har Singar Ke Phool* (all poetry collections in Hindi); *Itihas ka Dard* (essay collection in Hindi); *Samer Ke Phool* (Geet Collections), and *Ban Ban Bole Koeliya* (folksongs) —all in Bhojpuri. Among his well-known translated works are Kalidasa's *Meghdoot* and John Drinkwater's English play, *Abraham Lincoln* in Bhojpuri. He has also published works in English and Urdu which include, *Rashke Guhar*, *Dard-e-Guhar* and *Ek Shayar; Love and Beauty* and *Beauty in Will*. Moti B.A. has received many awards including U.P. Education Department award, Rahul Sankritayan Puraskar by U.P. Hindi Sansthan, Bhojpuri Ratan Alankaran, U.P. Kavi Ratan Upadhi, Srutikriti Samman, Setu Samman and others.

Sahitya Akademi feels honoured to confer the Bhasha Samman on Sri Moti B.A. for his unique contribution to Bhojpuri language and literature.



अनुक्रम

क्रम	विवरण	पृष्ठ
01	श्री मोती बीए का जीवन परिचय.....	005
02	फिल्म जगत में पदार्पण.....	009
03	छाया लोक की सैर.....	029
04	फिल्मी दुनिया में गीतों का संघर्ष.....	051
05	बरेजी थाम तथाबरेजी का मालवीय वंश.095	



माँ की गोद में हँसते, किलकते, मचलते अबोध शिशु को देखकर यदि कोई प्रसन्न होकर अपनी गोद में ले ले और उसे खेलाने और स्वयं उससे खेलने लगे तो माँ को जखर कुछ राहत मिल जाती है। इसी प्रकार लाहौर ने मुझे काशी की गोद से उठा लिया। टीचर्स ट्रेनिंग का कोर्स पूरा होने को था। इसके बाद मैं क्या करता, यह अनिश्चित था। मेरा विचार इतिहास में विशेष अध्ययन का था। शोध छात्र के रूप में मैं डाक्ट्रेट करने का अभिलाषी था। किन्तु गुरुदेव आचार्य पं.सीताराम चतुर्वेदी और महाकवि पण्डित श्यामनारायण पाण्डेय की कृपा से मैं बी.टी का कोर्स पूरा करने लगा। गरीबों के हौसले इसी तरह पूरे होते हैं। वे माँगते हैं चार आना, पाते हैं दस नया पैसा। मैं चार आना छोड़कर दस पैसे पर ही लट्टू हो गया।

यदि लाहौर ने बीच में टांग न अड़ाई होती तो लड़ते झगड़ते मैं डाक्ट्रेट जखर कर गया होता। मेरा यह विश्वास 73 वर्ष की उम्र में आज भी पूर्ववत् उद्धीष्ट है। गरीबी और असहायावस्था आत्म विकास के मार्ग में कभी बाधक नहीं होती प्रत्युत विकास पथ के यात्री को वह पाथेय प्रदान करती है। छोटेमोटे प्रलोभनों में यदि पथिक न उलझ जाए तो वह अपनी मंजिल पर अवश्य पहुँचता है। डॉ.शम्भूनाथ सिंह, डॉ.नामवर सिंह, डॉ.रामदरश मिश्रआदि जैसे अनेक सफलताकार्मियों की यही कहानी है। आरक्षण के मार्ग से पहुँचे हुये तो लुंज पुंज होते हैं। विकल साकेती के एक गजल की अद्वाली ऐसों पर पूर्ण रूप से व्यंगार्थ में चरितार्थ होती है -

मेरी साध हो न पूरी,

मेरी साधना के पहले ।

आरक्षित बन्धुओं की साध उनकी साधना के बहुत पहले ही पूरी हो जाती है। मैं स्वयं को इन दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं से भिन्न पाता हूँ कि न मेरी साध ही पूरी हुई और न मेरी साधना ही।

क्या फिल्मी कैरियर मेरा अभीष्ट था ? मेरा अभीष्ट तो बी.टी करना भी नहीं था। किन्तु मुझे बी.टी करना पड़ा। गरीबों का सिवा गरीबी दूर करने के कोई और अभीष्ट नहीं होता। गरीबों को मिले रोटी तो उनकी जान सस्ती है। गरीबों की कोई प्रेम कहानी नहीं होती। प्रेम कहानी तो मनचलों की होती है। मैंने पी-एच.डी को अपना लक्ष्य जखर बनाया था किन्तु गरीबी की बिल्ली ने रास्ता काट दिया। फिल्मों का आकर्षण अपनी जगह पर है ही। फिल्मी देवी का मुझ पर मुस्कुरा देना ईश्वरी चमत्कार जैसा लगा। कोई बुलाये तो कैसे न जाऊँ ? कुदरत मुझसे खेलने लगे तो क्यों मुँह बिचकाऊँ? सहज भाव से बिना किसी उत्तेजना के धोती कुर्ता, चप्पल में खरामाखरामा मैं काशी से लाहौर की दिशा में चल पड़ा। माँ की गोद से अलग होकर बालक तब तक खेलता रहता है जब तक उसे कोई कष्ट नहीं होता। मैंने माँ को बहुत याद किया। उसके नाम पर आँसू



बहुत बरसे। किन्तु उसकी प्यारी गोद जो छूटी तो छूटी ही रह गई।

क्या माँ भी अपने नन्हे शिशु को भूल गयी ? नहीं, नहीं, नहीं ! वह कभी नहीं भूली बहुत याद करती रही। चिट्रिठयां लिख लिख कर पठाती रही, मुझे अपने पास बुलाती रही। मैं उसके पास पहुँचने को तड़पता रहा, छटपटाता रहा। किन्तु कभी उस तरह नहीं पहुँच पाया जिसतरह नन्हा शिशु माँ की गोद पाकर उससे चिपक जाता है। आज तिहत्तर वर्ष की गिरती आयु में मैं उसी नन्हे शिशु की भाँति माँ माँ की रट लगाये हूँ और माँ आओ, आ जाओ कहकर पुकारती है। किन्तु यह दुनिया और इसकी दुनियादारी बच्चे को माँ से मिलने नहीं देती। फिल्मी डाइन से तो कभी का पिण्ड छूट चुका है मगर इस दूसरी चुरइल (चुड़ैल) दुनिया ने जो जकड़ रखा है इससे लगता है कि मेरी यह अन्तिम अभिलाषा कभी पूरी नहीं होगी। जिसने लाहौर को भारत से अलग कर दिया, उसी चुरइल ने मुझे काशी से दूर भगा दिया।

आत्मकथ्य का अर्थ है अपनी कहने योग्य बातें। आपबीती को किसी अंश तक आत्मकथ्य माना जा सकता है किन्तु दोनों में अन्तर यह है कि बीती, मात्रा बीती हुई बातें हैं जो कथित या अकथित हो सकती हैं और ये कथ्य या अकथ्य अर्थात् कहने योग्य या न कहने योग्य भी हो सकती है। आपबीती नद प्रवाह है। आत्मकथ्य कल कल ध्वनि। जीवन यदि किसी लक्ष्य की ओर प्रेरित है तो उस लक्ष्य प्राप्ति के संबंध की सारी बातें आत्मकथ्य हो सकती हैं। किन्तु जीवनमें यदि लक्ष्यविहीन कोई घटना घट जाए तो वह और कुछ भी हो आत्मकथ्य अथवा कथ्य नहीं हो सकती। मंजिल पर पहुँचाने वाली, मंजिल से गुमराह करने वाली बाधाएं जिन पर विजय पराजय निर्भर है आत्मकथ्य का विषय बन सकती हैं। इसलिए अन्धेरे में पड़े, भटकने वाले, जीवन की कोई कहानी नहीं होती। दौड़ना एक साधारण क्रिया है किन्तु जब यह क्रिया सामने एक आदर्श रखकर की जाती है तो उसमें एक विशेषता उत्पन्न हो जाती है और असंख्य व्यक्ति इस दौड़ से अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। आत्मकथ्य जीवन का शुभ्र पक्ष ही प्रस्तुत कर सकता है। लक्ष्य कोस्थिर कर उसे प्राप्त करने के लिए किया गया कठिन प्रयत्न जीवन का उदात्त पक्ष है। सर्वसाधारण की सहानुभूति का पात्रा बन जाता है यह प्रयत्न।

फिल्म मेरे जीवन का लक्ष्य नहीं था। मैं गरीब देहाती युवक, पिफल्म लोक की कल्पना भी नहीं कर सकता था। किन्तु सांप काटता है तभी जब उसकी पूँछ पर पैर पड़ जाए। फिल्मी नागिन की पूँछ पर राह चलते अचानक मेरा पैर पड़ गया और उसने पलटकर मुझे काट लिया। काफी अरसे तक उसके विष का प्रकोप मुझ पर रहा। झाड़-फूँक और उपचार ऐसे ऐसे हुआ कि मैं निरोग हो गया। जहर उतर गया लेकिन जो कमजोरी इसके असर से मुझमें पैदा हो गयी थी



वह 60-70 वर्ष की उम्र में भी पूर्ववत बनी हुई है। उस नागिन ने मुझे अपने दंश से मार डाला होता तो कितना अच्छा हुआ होता।

काशी के साहित्यालोक में जिस समय अपना कोई स्थान निश्चित करना चाह रहा था उस समय सर्वसाधारण में बढ़ती हुई लोकप्रियता के उपरान्त भी मठाधीश और क्षेत्राधिपति विद्वत्वृन्द मुझे ठोंक-ठेठा रहा था। अपनी मुहर और हस्ताक्षर मेरे कागज पर नहीं दे रहा था। शम्भुनाथ सिंह के पास मुहर और हस्ताक्षरयुक्त अनेक कागज थे। मेरे पास जनता जनार्दन की प्रसाद रूपी विभूति के अतिरिक्त कोई भी भड़कीली साहित्यिक मान्यता नहीं थी। गुलाब खण्डेलवाल, शिवमंगल सिंह सुमन, शम्भुनाथ सिंह मान्य थे। मेरा मामला तब तक विचाराधीन था जब तक मैं काशी के साहित्यिक लोक से विदा होकर छाया लोक में न चला गया। काशी से विदा होने के बाद मेरे सम्बन्ध में एक समाचार प्रकाशित हुआ हिन्दी के पत्रों में कि-'मोती बी.ए की अब साहित्यिक मृत्यु हो गयी क्योंकि वे फिल्मी दुनिया में चले गये'। मुझे अपनी साहित्यिक मौत की इस खबर से खुशी हुई कि चलो अच्छा हुआ। इस मौत ने कम से कम यह तो साबित कर ही दिया कि काशी के साहित्यालोक में मैं कभी जीवित था। यदि यह बात सच हो तो अपने अस्तित्व के लिए वह जीवित व्यक्ति जब लड़ते लड़ते जूझ जायेगा तो उसकी ओर से उसका भूत अनन्त काल तक जब तक कि अपनी पूजा ओङ्का-सोखा लोगों से ले नहीं लेगा तब तक सबको सताता रहेगा। मेरा फिल्मी जीवन मेरे साहित्यिक जीवन की असफलता का घोषणा पत्रक जैसा है। गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के आचार्य, सुप्रसिद्ध आलोचक रामचन्द्र तिवारी ने हिन्दी जगत में मेरी साहित्यिक अवमानना के दो प्रबल कारण बतलाए हैं-पहला कारण है मेरा फिल्म जगत में जाना और दूसरा कारण है मेरा भोजपुरी परिवेश। एक तीसरा कारण मैं अपनी ओर से जोड़ देता हूँ, अनुवाद का क्षेत्र अपनाना जैसा कि डा.कृष्णदेव उपाध्याय ने अपने भोजपुरी साहित्य के इतिहास में मेरे सम्बन्ध में लिखा है।

आश्चर्य है, इन सारी बातों का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मैं किंचित विचलित नहीं हुआ और अपनी राह चलता गया और अभी भी पूर्ण ढंग से चलता चला जा रहा हूँ। इस आत्मकथ्य में जब आवश्यकता प्रतीत होगी यह तथ्य पुनः प्रकट होकर अपने सम्बन्ध में फैसले की मांग करेगा। इस समय तो छायालोक की ही कुछ बातें प्रस्तुत करनी होंगी। टीचर्स ट्रेनिंग कालेज काशी में सन् 1943-44 में अध्ययन कर रहा था। फरवरी के महीने में किसी रविवार को शम्भुनाथ सिंह के साथ 'संसार' कार्यालय गया। हास्य व्यंग्य के संगुण स्वरूप बेधड़क बनारसी ने अपनी सहज आनन्दविदिनी शैली में चुटकी काटते हुए एक जुमला कस दिया-‘पंचोली आर्ट पिक्चर्स लाहौर के डायरेक्टर साहब आए हैं, कलाकारों और गीतकारों की खोज में। आप लोग तो काशी



के गीतकार हैं। क्यों नहीं मिल लेते उनसे ? हम लोगों ने कहा-'आप भी खूब कहते हैं। हम लोगों से भला वे मिलेंगे ?' बेधड़क जी ने कहा-'मिलेंगे क्यों नहीं ? जब इसीलिए आये हैं तो। क्लार्क होटल में ठहरे हुए हैं लोग। चार बजे तक भेट हो सकती है।' हमने जैसे कि उनकी बात अनसुनी कर दी हो। मगर हम दोनों संसार कार्यालय से तुरन्त निकले और सड़क क्लार्क होटल की ओर अपने आप ही मुड़ गयी। शम्भुनाथ सिंह ने कहा-'चलो देख तो आया जाए कि कैसे होते हैं ये फिल्मी जीवा' पहुँच गये हम लोक क्लार्क होटल। सामने के सभी कमरे बन्द। आवाज लगाने पर किसी के आने की आहट। बाहरी कमरा खुला और भारी भरकम मानवीय आकार प्रकट हुआ। सिर पर दूधिया पगड़ी, कृष्णारुण वर्ण का सूट, गले में झलकती भड़कीली टाई, नाक पर जगमगाता गागल, मजे की दाढ़ी मूँछ, पतली लम्बी किंचित बड़ी बड़ी आँखें, उन्नत नासिका, गौर वर्ण। गम्भीर आवाज-'कौन है ? क्या है ?' हम लोग तुरन्त समझ गये कि ये पंजाबी सिक्ख सरदार हैं। नमस्कार के उपरान्त हमने अपना परिचय दिया और मिलने का आशय व्यक्त किया। शम्भुनाथ सिंह ने मेरा परिचय उन्हें गीतकार के रूप में दिया और मैंने शम्भुनाथ सिंह का परिचय कहानीकार के रूप में। परिचय के बाद सरदार जी ने कहा कि मिलने का वक्त समाप्त हो गया है। आप लोग कल चार बजे के पहले आ सकते हैं। फाटक बन्द हो गया। हम लोग अब कम्पाउण्ड के बाहर सड़क पर थे। वक्त बेकार होता देख इसे सार्थक बनाने के लिए महाकवि पण्डित श्याम नारायण पाण्डेय के निवास स्थान की ओर हम लोग बढ़ गए। साढ़े 6 बजे पाण्डेय जी के यहां से हम लोग लौटे ठाकुर दिलीप नारायण सिंह के मकान पर जहां प्रसाद परिषद की साप्ताहिक बैठक का आयोजन था।

दिलीप नारायण सिंह का आलीशान मकान और हालनुमा शानदार बैठका। प्रसाद परिषद् के तत्वावधान में आयोजित गोष्ठी का कार्यक्रम चल रहा था। बीस-पचीस चुने साहित्यप्रेमी उपस्थित थे। आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी अध्यक्ष के पद पर आसीन थे और उनकी अगल बगल दो पंजाबी सिक्ख सरदार एक ही ठाट में विराजमान थे जिनमें से एक की बगल में एक अन्य विशिष्ट व्यक्ति सूट में सुशोभित थे। अन्यान्य विभिन्न कवियों के अतिरिक्त महेन्द्र और सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव भी उपस्थित थे। हम लोगों के पहुँचते ही गोष्ठी के अधिकांश सदस्य खिल गये और जोरदार हर्षध्वनि से हम लोगों का स्वागत हुआ। समाश्वस्त होकर देखा तो वही क्लार्क होटल वाले सरदार साहब यहां भी हम लोगों को नजर आए। बात कुछ भी समझ में नहीं आई कि ये लोग यहां कैसे पहुँच गये। बाद में पता चला कि आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी से मिलने के लिए पंचोली आर्ट पिक्चर्स के डायरेक्टर साहब ने यह कार्यक्रम अपने लिए स्थिर किया था। हम लोगों का जोरदार अभिनन्दन देख कर सरदार साहब भी, जिनसे हम लोगों ने क्लार्क होटल में मिलने की कोशिश की थी,





हम लोगों को भली-भाँति समझ गये। सभी कवियों ने अपनी अपनी रचनाएं सुनाई थीं। सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव की कविता बहुत जोरदार ढंग से जमी थी। हम लोग भी वहां आ ही गए थे। पहले शम्भुनाथ सिंह ने कविता सस्वर पढ़ी उसके बाद मैंने भी सस्वर अपना कविता पाठ किया। प्रसाद परिषद की इस बैठक में मैंने 'खूप भार से लदी तूं चली' कविता सुनाई। गोष्ठी समाप्त होने पर डायरेक्टर महोदय ने सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव और मुझको पुनः मिलने के लिए कहा। आचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी से मेरे सम्बन्ध में उन्होंने विशेष भाव से बात की। उन्होंने प्राथमिकता मुझे ही प्रदान की थी और मुझे अपने साथ वे लोग लाहौर ले जाना चाहते थे। किन्तु ट्रेनिंग कालेज की परीक्षा छोड़कर मैं कैसे चला जाता? परीक्षा देने के बाद समय से पण्डित जी के पास उनका तार आया और मैं मई के महीने में सन् 1944 में लाहौर के लिए रवाना हुआ।

काशी के बाद गाजीपुर मेरा दूसरा धाम बन गया था। पण्डित भागवत मिश्र का आवास मेरा दूसरा घर था। उनके घर की छाया में मैं निश्चिंत था। उनका आश्रय पाकर मैं वास्तव में सनाथ था। हृदयेश जी, श्रीनाथ जी, गहलौत जी, अश्रु जी, बेखुद साहब, खामोश सभी मेरे अनन्य सखा थे। मेरी लाहौर यात्रा के समाचार से गाजीपुर में लहर उठी थी और मेरी सारी तैयारी मिश्र जी के मकान पर हुई। यहाँ पर कुर्ता बना रेशमी, खादी की धोती खरीदी, टावेल, चादर की व्यवस्था हुई। मिश्र जी ने राह खर्च भी दिया। मित्रों ने मुझे रेलगाड़ी पर चढ़ा दिया और मैं लाहौर के लिए रवाना हो गया। बम्बई और कलकत्ता से तो धूम ही आया था अब लाहौर से धूम फिर आने का अवसर क्यों हाथ से जाने दूँ? सारा खर्च कम्पनी वहन करने को तैयार थी। मेरा इरादा महज लाहौर देखने का था। वहां जाने पर क्या होगा इसकी न कोई कल्पना थी न चिन्ता थी। वहाँ से जाकर लौट आना ही मेरे लिए एक बड़ी उपलब्धि थी। इस यात्रा को मैं अपने जीवन की स्थायी व्यवस्था की दृष्टि से नहीं देखता था। जब सारी बातें अनिश्चित और अज्ञात हों तो उसमें प्रविष्टि एक अध्ययन का आनन्द ही दे सकती है। समझिए कि मैं लाहौर पढ़ने ही जा रहा था। पंचोली से जो तार आया था उसमें लिखा था कि निश्चित तारीख को निश्चित समय पर ट्रेन पहुँचने के पूर्व कम्पनी का प्रतिनिधि स्टेशन पर मेरी प्रतीक्षा करेगा। और मैं पंजाब मेल से निश्चित समय पर लाहौर कैण्टोनमेण्ट स्टेशन पहुँच गया। ट्रेन से उतर कर प्लेटफार्म पर खड़ा हो गया। कोई परिचित नहीं, नितान्त अकेला। मैंने प्रत्युत्पन्न मति का सहारा लिया। प्लेटफार्म से चलकर स्टेशन से बाहर तांगेवालों की भीड़ में धंसा और एक तांगा लेकर पंचोली आर्ट पिक्चर्स के कम्पाउण्ड के बाहर दरवाजे पर जहां गोरखा द्वारपाल खड़ा था, आ पहुँचा। यहां आने पर ज्ञात हुआ कि सेठ जी यहाँ कभी-कभी आते हैं। वे नियमित रूप से अपने दूसरे नम्बर के स्टूडियो में रहते हैं जो यहाँ से दो-तीन किलोमीटर दूर





मुस्लिम टाउन में है। जहां हम पहुंचे थे वह स्टूडियो नम्बर एक था। माल रोड पर यह स्थित था। स्टेशन से दोनों ही स्टूडियो तीन-चार मील की दूरी पर थे। तांगे को मैंने छोड़ दिया और अपनी पहचान बताकर गोरखे के साथ स्टूडियो के भीतर बैठा। अन्दर आफिस में यह ज्ञात हुआ कि कम्पनी की ओर से स्टेशन पर हमको रिसीव करने के लिए एक व्यक्ति गया हुआ है। दुर्भाग्य से उस व्यक्ति से हमारी भेंट नहीं हुई थी। तब तक स्टेशन से उसका फोन आया पूछताछ का और यह जानकर कि बनारस वाले पण्डित जी स्टूडियो में पहुंच गये हैं, वह व्यक्ति दस मिनट में मेरे सामने उपस्थित हो गया। उसकी ड्र्यूटी मेरी सेवा में लगा दी गयी थी। ये वही सज्जन थे जो शम्भुनाथ सिंह और मुझसे क्लार्क होटल में पहली बार मिले थे। इनका नाम था सरदार एस रणजीत सिंह। जो सज्जन इनके साथ थे वे श्री रवीन्द्र दवे थे जिन्होंने 'पूंजी' फिल्म का निर्देशन किया था। सरदार एस रणजीत सिंह उनके साथ सहायक निर्देशक के रूप में काम करते थे। 'पण्डित जी' कोई तकलीफ तो नहीं हुई ? मैं प्लेटफार्म पर आपको ही तलाश रहा था। आप न जाने किस रास्ते से निकल आये, मैंने देखा नहीं। यह कहते हुए सरदार साहब ने मेरा सामान उठा लिया और हम लोग सीढ़ी से ऊपर के कमरे की ओर बढ़े जहां मेरे रुकने का प्रबन्ध था। पांच मिनट में स्थिर होने और नाश्ता कर लेने पर सरदार एस रणजीत ने (अब से जिनको मैं रणजीत ही लिखूँगा क्योंकि लाहौर में वे मेरे प्रथम सखा थे) प्रस्ताव किया-सेठ जी इस समय स्टूडियो नम्बर दो मुस्लिम टाउन में ही होंगे। वहां चलने पर तुरन्त मुलाकात हो जायेगी। वे प्रतीक्षा में हैं। इसलिए बेहतर हो कि हम लोग अभी वहां पहुंचकर उनसे भेंटवार्ता कर लें। मैं राजी हो गया यह सोचते हुए कि अब किस सेठ से मेरी भेंटवार्ता होगी ? इन लोगों से बढ़कर कोई अन्य भी है क्या ? रणजीत ने बतलाया कि ये ही सेठ जी पूरी कम्पनी के मालिक हैं। इनका नाम है सेठ दलसुख एम पंचोली। ये गुजराती हैं, बहुत बड़े व्यक्ति हैं।

हम स्टूडियो नम्बर दो में पहुंच गये। मैं प्रतीक्षालय में बैठा दिया गया। रणजीत को मैंने देखा कि सेठ जी के कमरे के सामने कई बार जाकर वे लौट लौट आते हैं मगर चिकउठाकर उनके कमरे में पैठ जाने की हिम्मत उनमें नहीं है। मैंने सोचा कि काशी मेंयह रणजीत मेरे लिए मेरी पहुंच से बाहर था। मुझ पर कितना रोब झाड़ता था। यहां देखता हूँ तो इसकी सारी सिट्री पिट्री गुम है। तब तक रणजीत ने मुझे सजग किया कि चलिए, सेठ जी ने आपको याद फरमाया है। अब हम दोनों सेठ जी के प्रशस्त कमरे में चमकती मेज की बगल में शानदार कुर्सियों पर विराजमान थे। मध्य में सेठ जी अपनी आलीशान कुर्सी पर सुशोभित थे जिनके दाहिने कक्ष में श्री मोती बी गिडवानी नाम के निर्देशक बैठे थे। सेठ जी ने मेरा परिचय उनसे कराया। सामान्य शिष्टाचारोपरान्त



गिडवानी साहब से कि उन्होंने 'जर्मांदार' फिल्म का निर्देशन किया है और अब उनकी नयी पिक्चर बनने जा रही है जिसके लिए गीत लिखाने के उद्देश्य से आपको बुलाया गया है।

फिल्मों में हिन्दी भाषा की सांस्कृतिक हत्या का सवाल मैंने पहले प्रस्तुत किया। यह हत्या क्या जान बूझ कर की जाती है ? मैंने सेठ जी को उदाहरण दिया कि लाहौर से उतरकर सड़क के किनारे लगे पोस्टरों पर गौर किया तो एक फिल्म का इश्तहार देखा। इस फिल्म का नाम तो है 'शुक्रिया' लेकिन पोस्टर पर लिखा है 'शुकरिया'। शुकरिया का अर्थ हिन्दी में होता है मादा शूकर। इसी तरह अनेक प्रकार के अर्थहीन शब्द संवाद और गीतों में, कथानक में, उसके प्रस्तुतीकरण में भरे पड़े रहते हैं। पैसे तो यदि ये अनर्थ न किये जायें तो भी कमाये जा सकते हैं। तो क्या ये सब कुछ अज्ञानता के कारण होता है ? सेठ जी ने मेरे प्रश्न का समाधान करते हुए उत्तर दिया कि भारतवर्ष विशाल देश है। सर्वसाधारण को इसका विशुद्ध रूप ज्ञात नहीं हो सकता है। उनकी समझ में आने लायक फिल्में तैयार की जाती हैं। इसीलिए कहीं न कहीं उनके स्तर पर उतरने की कोशिश में यह गड़बड़ी होती रहती है जिसका धीरे धीरे सुधार सम्भव है। अब आप अपनी कोई कविता सुनाइए। इस प्रस्ताव के पहले सेठ जी ने आरेंज स्कैच पिलाकर सिगरेट से मेरा यथोचित सम्मान कर लिया था। कविता सुनाने के प्रस्ताव पर रणजीत झूम गये। उन्होंने तत्काल सुझाव दिया कि पण्डित जी, वही कविता आप सुनाइए जो बनारस की उस गोष्ठी में आपने सुनाई थी। वही, जिसमें किसी नदी का चित्रण है कि 'तूं चली, सृष्टि ही मिली' वगैरह-वगैरह। मैंने तत्काल उनको आश्वस्त किया कि हाँ, हाँ, ठीक। वही कविता मैं सेठ जी को सुनाऊँगा, यह कहकर किंचित भूमिका प्रस्तुत कर मैंने सस्वर 'रूप भार से लदी तूं चली' कविता सेठ जी को सुनाई। कविता सुनकर सेठ जी को बहुत आनन्द हुआ। वे प्रफुल्लित हो उठे। उन्होंने कहा कि रणजीत, पण्डित जी का सारा सामान लेकर तुम सीधे मेकलोड रोड पर मानसरोवर होटल के ऊपर वाले दूसरे कमरे में आ जाओ, स्टूडियो नम्बर एक में। मैं पण्डित जी को अपने साथ लेकर खुद वहाँ आ रहा हूँ। रणजीत प्रसन्न होकर माल रोड स्टूडियो की तरफ तत्काल रवाना हो गये। मैं सेठ जी के साथ ही उनके कमरे से निकला। उनकी कार में सवार हुआ। सन् 1943-44 में कलकत्ता, बम्बई, पूना और लाहौर फिल्मव्यवसाय के प्रमुख केन्द्र थे। कलकत्ता के न्यू थियेटर्स, बम्बई के बाम्बे टाकीज, पूना के प्रभात और लाहौर के पंचोली आर्ट पिक्चर्स का बड़ा नाम था। एक नामी फिल्म कम्पनी के मालिक सेठ दलसुख एम पंचोली की कार में उन्हीं के साथ लाहौर की सड़क पर चलना आनन्ददायक अनुभव था। पंचोली साहब महान निर्माता ही नहीं महान व्यक्ति भी थे। वे शान्त, गम्भीर, उदार, प्रतिभा सम्पन्न, साहसी, गुणों का आदर करने वाले और निष्पक्ष व्यक्ति थे। इसीलिए उनके अधीनस्थ कर्मचारी उनका





बड़ा अदब करते थे और उनसे मिश्रित भय खाते थे। वे मितभाषी, मृदुभाषी थे। उनकी आवाज हमदर्दी में डूबी रहती थी। वे जिस किसी को लिफ्ट नहीं देते थे। योग्यता और योग्य व्यक्ति की परख करने में उनको देर नहीं लगती थी। अपने वचन के वे पक्के थे। मैंने उनमें कोई दुर्गुण नहीं पाया। जैसे जैसे हमारे दिन पंचोली की छाया में पलते गये मेरा विचार उनके प्रति और दृढ़ होता गया। उनसे मुलाकात के प्रथम दिन उनके प्रति उपरोक्त विचार क्रम से एकाएक मेरे मन में उभरे थे किन्तु उनके सम्पर्क में मैं जब तक लाहौर में रहा मेरे ये विचार और भी स्थिर होते गये। यद्यपि ऐसे अनेक अवसर भी आते रहे कि मैं सेठ जी की अकृपा का भी भागी हो जाया करता था। आज मैं सेठ जी से नहीं सम्पूर्ण फिल्मी वातावरण से पृथक हूँ और लाहौर में न तो पंचोली आर्ट पिक्चर्स ही रह गया और सेठ दलसुख एम पंचोली भी अब दुनिया में नहीं रह गए। किन्तु उन दिनों की खुशबू जो मेरी आत्मा में व्याप्त हुई और पंचोली साहब के प्रति मेरे मन में जो भाव अंकित हुए, आज भी एक गुनगुने नशे के झोंके का असर पैदा कर देते हैं। न तो मैं उन दिनों को हेरता हूँ और न उन दिनों के व्यक्तियों के फेर में रहता हूँ। मगर पंचोली का वह वातावरण हमेशा शीत-ताप नियंत्रित वायुमण्डल में आन्तरिक सुख प्रदान किये रहता है।

मेकलोड रोड पर स्थित मानसरोवर होटल के सामने पहुँचकर कार रुकी और सेठ जी के साथ हम दूसरे तल्ले पर पहुँच गये। कल सवेरे हम फिर आपसे मिलेंगे और साथ ही स्टूडियो चलेंगे यह कहकर सेठ जी अपने बंगले पर गये। थोड़ी देर में सरदार रणजीत सिंह मेरा सामान लेकरमाल रोड स्थित स्टूडियो नम्बर एक से आ गये। ऐ मेरी अङ्गतालित वर्ष पुरानी हरी ताजी याद, तुम्हारा आना कितना सुखद है- क्षण भर रुक कर नाचो
स्मृति नाचो !

तेरा आना सुखद बहुत है
मेरे उर के रंगमंच पर
झूम झूम झूम नाचो
स्मृति नाचो !

सरदार रणजीत सिंह की जब याद आती है, मेरे मन की दशा विचित्र हो उठती है। क्लार्क होटल काशी के रणजीत और मानसरोवर होटल लाहौर के रणजीत में जमीन-आसमान का अन्तर हो गया था। तब हम उनके एक रुख के ख्वाही थे। अब वे हमारे इशारे के मुन्तजिर थे। उनका मेरे लिए अब साधारणीकरण हो गया था। उनको हमेशा इस बात की फिक्र रहा करती थी कि पण्डित जी को किसी बात की तकलीफ न होने पाये। मेरा मन बहलाने के लिए उन्होंने लाहौर का



सुप्रसिद्ध शालीमार बाग मुझे दिखलाया, रावीके तट की सैर करायी, जहांगीर और नूरजहां का समाधि-स्थल दिखलाया, अनारकली मुहल्ला और मॉडेल टाउन से पहचान कराई। लाहौर में सरदार एस रणजीत मेरे प्रथम सुहृद हो गये और उनका यह भाव मेरे लिए लाहौर के मेरे अन्तिम दिन तक सुरक्षित रहा। रणजीत अध्ययन प्रेमी व्यक्ति थे। उनकी मानसिक शक्ति प्रखर थी। वे बड़ी अच्छी अंग्रेजी बोलते और लिखते थे। वे कर्मठ और परिश्रमी थे। इस समय मानसरोवर होटल में सेठ जी ने उन्हें मेरी देखरेख के लिए नियुक्त कर रखा था। कल दस बजे सुबह फिर आने को कहकर रणजीत भी अपने घर चले गये। लगातार तीन दिनों तक पंचोली साहब से स्टूडियो में पूरे दिन भर मेरा सत्संग चलता रहा। पता नहीं सेठ जी के किस जन्म की कविता की प्यास उभर आई थी जो तृप्त ही नहीं होती थी। वे मुझसे केवल कविता और गीत ही सुनते रहते थे। मैं भी बड़ा मगन था। पूरे स्टूडियो पर मेरा प्रभाव छाया रहता था। जिस दृष्टि से कर्मचारीगण सेठ जी को देखते थे उसी दृष्टि का अधिकारी मैं सहज भाव से बना हुआ था।

तीसरे दिन सेठ जी के रिटायरिंग रूम में जब मैं अपनी कविताएं सख्त सुना रहा था तो मेरी दृष्टि एक व्यक्ति पर पड़ी जो आराम कुर्सी पर बड़े आरामसे बैठे हुए एकाग्रचित्त कविताएं सुन रहे थे। वे औसत कद के थे। उनका चेहरा एकदम गोल था। वे गौरवर्ण के थे। आँखें कुछकुछ छोटी थीं, नासिका उभरी हुई, ललाट कुछ ऊँचा आगे की ओर उभरा हुआ था। धोती कुरता, जवाहर जैकेट से वे विभूषित थे। पैरों में सैण्डल के ढंग का चप्पल था। शुभ्र खादी परिधान में वे बड़ेही भव्य प्रतीत हो रहे थे। सेठ जी ने, जब मैंने काफी कविताएं पढ़ चुकने के बाद जरा विश्राम करना चाहा तो, उस सज्जन से मेरा परिचय कराया। उन्होंने जैसे ही उनका नाम लिया, मैं अपनी कुर्सी छोड़कर खड़ा हुआ। मैंने उनको प्रणाम किया। वे श्री हरिकृष्ण प्रेमी थे। व्यावहारिकता की दृष्टि से यहाँ शिष्टाचार में मुझसे एक सूक्ष्म भूल हो गई जिसका अनुभव मुझे बाद में हुआ। अनुभवोपरान्त भी मैं यह भूलसुधार नहीं कर सका। कारण इस प्रकार की भूल करना मेरा सहज स्वभाव है, मेरी प्रकृति का एक अविच्छिन्न अंग है। यह भूल मेरे जीवन के साथ जायेगी। प्रसंगानुसार इसका विवेचन होगा। इस स्थल पर इसका संकेत मात्र यथेष्ट है। प्रेमी जी का जखरत से ज्यादासम्मान सेठजी का अपमान था। इससे मेरी हानि हुई आगे चलकर। काव्य गोष्ठी समाप्त हुई। हम सभी लोगों ने एक साथ लंच लिया। लंचोपरान्त सेठ जी के साथ मैं उनके आफिस गया। धूम्रपान करते हुए पंचोली साहब बोले-‘अब हम अपने काम के मोत्तलिक आपसे कुछ व्यवसायिक बात करेंगे। आप हमारे यहाँ गीतकार के पद पर कार्य करें। हम आपको ४० महीने तक ३०० रु प्रतिमाह वेतन देंगे। इसके बाद आपका वेतन ५०० रु प्रतिमाह कर दिया जायेगा। गिडवानी साहब की पिक्चर ‘कैसे कहूँ’ में आपको गीत



लिखना होगा जिसके निर्देशक मास्टर अमरनाथ हैं। आपको मंजूर है ? मैं क्या उत्तर देता सिवा 'हां' के ! मैंने कहा-'ये सारी बातें आप ही जानें। मुझे जो करने को कहा जायेगा वह करने में अपनी सामर्थ्य भर कुछ उठा नहीं रखूँगा।' इस प्रकार पंचोली साहब और हमारे बीच बातचीत पूरी हो गयी। अब मैं कम्पनी का नियमित सेवक हो गया। आज से सेठ जी ने अपनी कार में मुझे घुमाना और मानसरोवर होटल पहुंचाना बन्द कर दिया। मैं सेठ जी के कमरे से नमस्कार करके बाहर आ गया लान में जहां श्री हरिकृष्ण प्रेमी अपनी सायकिल के सहारे घर जाने को तैयार खड़े थे। वे 'कैसे कहूं' के संवाद लेखक के रूप में नियुक्त थे। मैं भी श्री प्रेमी जी की बगल में विनम्र भाव से आकर खड़ा हुआ। प्रेमी जी रुखी हँसी हँसते थे। उनकी दृष्टि पैनी थी। वे बोलते भी कम थे। गम्भीरता उनकी संशयोत्पादक थी। उनसे दौड़कर मिलना और बाखैरियत वापस लौटना आसान काम नहीं था। अज्ञात अवस्था में दौड़ने वाला व्यक्ति सहसा अवरोध पाकर जैसे टकरा जाए उसी प्रकार प्रेमी जी के समक्ष प्रस्तुत होने पर होता था। उनकी अनेक कविता की पुस्तकें और नाटक मैंने पढ़े थे। उनकी कविता की चार पंक्तियां हमेशा हमारी जुबान पर रहा करती थीं -

मत सिसको मत अश्रु बहाओ
 मत अपना अपमान कराओ
 तुमसे कौन कौन है, सबको कर
 आहान निकट ले आओ ।
 अलग अलग ईंधन की लकड़ी
 अलग अलग क्यों सुलगे बोलो
 एक साथ मिल लपटें लपकें
 महाक्रान्ति का धूँघट खोलो ।

राष्ट्रीयता, भारतीयता और स्वतंत्राता की महत्ती प्रेरणादायिनी शक्ति की छांह में अपने को पाकर मैं सनाथ हो गया था। प्रेमी जी ने मुझसे कहा-'आपके सम्बन्ध में सेठ जी हमसे पूछ रहे थेकि गीतकार के रूप में आप कैसे रहेंगे। वे बिना मुझसे पूछे कोई काम नहीं करते। मैं यहां आपकी नियुक्ति गीतकार के पद पर करा दूँगा। चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। इन बातों को सुनकर मैं प्रेमी जी का जितना कृतज्ञ हुआ उससे कहीं अधिक चकित और विस्मित हुआ। ये अब मेरी नियुक्ति कराने चले हैं जबकि सेठ जी से मेरी अन्तिम वार्ता पूरी हो चुकी है। प्रेमी जी ने लाहौर से मेरा पत्ता काटने में कुछ उठा नहीं रखा। फिर भी मेरी श्रद्धा उनके प्रति पूर्ववत् बनी रही। सेठ जी ने स्टूडियो नम्बर दो में ही मेरे लिए एक सजे सजाये कमरे की व्यवस्था की। इछरा नहर के किनारे



मुसलिम टाउन के इछरा मुहल्ले में यह स्टूडियो स्थित था। स्टूडियो के होटल से नाश्ता-पानी भोजन आदि का प्रबन्ध था। उन दिनों 'दासी' फिल्म निर्माणाधीन थी। 'कैसे कहूँ' फिल्म का भी शुभारम्भ हो चुका था। एक बहुत बड़ी कास्ट्रयूम पिक्चर 'शीरी फरहाद' के निर्माण की योजना विचाराधीन थी। 'कैसे कहूँ' फिल्म के लिए मैंने दो गीत लिख लिए थे। सेठ जी और गिडवानी साहब को दोनों गीत पसन्द थे। एक अविस्मरणीय घटना इस समय की उस चुभे कांटे की तरह टीसती रहती है जो कभी निकल न सके और हमेशा उसकी चुभन का दर्द होता रहे। एक मुक्तक मेरी इस मानसिक दशा को अधिक स्पष्ट कर सकता है - दिल जो बहला तो क्या मिल गया

दिल न बहला तो क्या घट गया
खार इक जो चुभा था कभी
जबकि दिल में चुभा रह गया।

सेठ जी मेरी आवाज पर बहुत मुग्ध थे। मैं गाता था ही। इसी विश्वास पर उन्होंने 'दासी' फिल्म के संगीत निर्देशक मास्टर अमरनाथ से कहा-स्ट्रीट सांग- 'खामोश निगाहें ये सुनाती हैं कहानी, लोआज चली ठोकरें खाने को जवानी' मिस्टर मोती से गवा लो और प्ले बैक के लिए मेरे पास उनका फरमान आ गया। मैं जानता था कि स्वर-ताल के ज्ञान के अभाव में यह काम मुझसे हो नहीं सकेगा। मुझे तर्ज सीखने के लिए मास्टर अमरनाथ के साथ उनके पियानो पर बैठना पड़ा। दो-तीन बार उनके निर्देश पर मैंने तर्ज पकड़ने की चेष्टा भी की मगर मास्टर अमरनाथ को मेरी अज्ञानता से निराशा हुई। मैंने भी विनीत स्वर में अपनी असमर्थता स्वीकार की। इस गीत को लाहौर के ही युवा गायक एस डी बातिश से गवाया गया और यह गीत अपने जमाने का अत्यधिक लोकप्रिय 'हिट सांग' के रूप में स्वीकार किया गया। अगर संगीत की मात्र साधारण जानकारी मुझे करादी गई होती तो निश्चय ही फिल्मी जीवन का रेकार्ड कुछ और होता। यह दोष किसका है- जब इस पर विचार करता हूँ तो इस उम्र में जो घटना मेरे साथ घट रही है वह कम दर्दनाक नहीं है। मेरे द्वितीय पुत्र भालचन्द्र उपाध्याय को गीत गाने का कुदरती शौक है। उसकी आवाज भी प्राकृतिक मेलोडी और पैथोस से परिपूर्ण है और मेरे जैसे ठोकर खाये पिता का वह पुत्र है। मगर उसको संगीत की साधारण शिक्षा, परिवेश और वातावरण के कारण नहीं मिली। यदि उपयुक्त स्थान जहां ये सभी सामान्य रूप से सुलभ हैं, रहे तो ऐसी दर्दनाक हालत पैदा ही नहीं हो सकती थी। यह कष्ट एक पीढ़ी का नहीं, तीन पीढ़ियों का है। मेरे पिता जी के साथ यही बात थी। मेरे पिता जी अपने मुँह से सितार के बोल निकालते थे। दिर दिर दारा, दिर दिर दारा। उन्होंने सितार रखा भी था मगर वे भी संगीत नहीं सीख पाए। मैंने किशोरावस्था में एक हारमोनियम खरीद कर अपने मन से



‘सा रे गा मा प ध नी सा’ करता रहा। मगर नियमित इस विद्या को साथ नहीं सका। हारमोनियम बैंच दिया। मेरे भतीजे हरीश उपाध्याय ने वायलिन खरीदा मगर वह भी नहीं सीख सका।

ऐसी ही एक अत्यन्त सामान्य घटना है इसी समय की जो मुझे बहुत कचोटती है। ‘देवदास’ फिल्म को मैंने काशी में देखा था और उसका हीरो ‘सहगल’ मेरा बहुत ही प्रिय कलाकार था। उसका चित्र जब मैं देखता था मुग्ध हो जाया करता था। धोती कुर्ता वाला उसका बंगाली स्वरूप मुझे बहुत भाता था। अशोक कुमार और सहगल मेरे आदर्श नायक थे। अभी दिलीप कुमार का फिल्मी दुनिया में जन्म नहीं हुआ था। ‘ज्वार भाटा’ में गर्भाधान संस्कार उसका चल रहा था। मैं अपने कमरे से विधिवत नाश्ता पानी करके साफ धोती, रेशमी कुर्ता, गले में रेशमी चादर, पैर में चप्पल, कलाई में घड़ी और हाथ में पुस्तक लिए उतरा। धीरे धीरे उस स्टूडियो हाल में पहुँचा जहां मोती बी गिडवानी साहब, रागिनी जागीरदार, सरदार एस रणजीत सिंह, साउण्ड रेकार्डिंग्स ईशान धोष, कैमरा मैन मिस्टर मल्होत्रा आदि मौजूद थे। स्टूडियो के प्रवेश द्वार के भीतर पैर रखते ही सबकी दृष्टि मुझ पर पड़ी और सब एकटक मुझे निहारते रह गये। सरदार एस रणजीत से नहीं रहा गया और वे बोल उठे-‘वाह, आप तो ऐसे जंच रहे हैं जैसे कि ‘देवदास’ फिल्म के हीरो सहगल हों। ‘किंग कोफेचुआ’ ने तो महाकवि टेनीसन की ‘बेगर मेड’ को अपनी पटरानी बना लिया मगर मैंने अपने फिल्मी जीवन में कभी इस प्रकार का अवसर प्राप्त नहीं किया, ऐसा क्यों? इसका उत्तर सरल है। प्रतियोगिता के युग में ऐसी बातों का कोई महत्व नहीं रहता है। मैंने न तो इसे चाहा मन से और न तो इसका मेरी ओर फुरसत से निहारने का अवसर था। मेरे जैसे अनेक सहगल, अशोक कुमार और दिलीप कुमार फिल्मी चौखटों में वैसे जड़ दिए गये हैं जैसे किसी देव मंदिर के चौखटों में चांदी के सिक्के जड़ेरहते हैं। मैं फिल्म संसार में जो कुछ करने या जो कुछ बनने गया था उसी की व्यथा कम नहीं कि इसके ऊपर से इतर अध्याय जोड़े जाया। मेरी नियुक्ति के एक महीने के भीतर सेठ जी ने मुझे एक योग्य संगीत निर्देशक तलाश करने का भार सौंपा और मैं अवकाश लेकर लाहौर से लखनऊ इस काम के लिए आया। मेरे अनेक मित्र लखनऊ में थे। भगवान प्रसाद त्रिपाठी, शम्भुनाथ सिंह भी किसी प्रयोजन से लखनऊ में मुझसे मिले। आकाशवाणी केन्द्र पर मैंने आदरणीय बन्धु रमई काका से इस सम्बन्ध में वार्ता की और उन्होंने एक बहुत ही योग्य व्यक्ति का नाम प्रस्तावित किया। उस व्यक्ति का नाम है जंगबहादुर शर्मा, स्वनामधन्य मुंशी अजमेरी के पुत्र। शास्त्रीय संगीत में विधिवत दीक्षित और लोक धुनों के विशेषज्ञ जंग बहादुर शर्मा से मिलकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। एक गोष्ठी का आयोजन हुआ। मैंने अपना लिखा एक गीत उनको धुनबनाने के लिए दिया-‘आएन मोहेनिदरिया-’। जंगबहादुर की धुन की सबने तारीफ की। मैंने इन्हीं को अपने साथ ले जाने का निश्चय किया।



जंग बहादुर मेरे साथ लाहौर आए। दुर्भाग्य से सेठ जी के बड़े भाई साहब का इसी समय देहावसान हो गया। सेठ जी अपने गांव चले गये थे। जंगबहादुर जी के गुणों को परखने वाला वहाँ दूसरा कोई नहीं था। गिडवानी साहब से हम लोग मिले। उन्होंने मेरा लिखा 'कैसे कहूँ' का एक गीत तर्ज बनाने के लिए उनको दिया। जंग बहादुर ने दो-तीन तर्जें उस गीत की बनाई। गिडवानी साहब ने अपने सहकर्मी बन्धुओं के बीच उन तर्जों को सुना। जंग बहादुर के हाथ में हारमोनियम थी। ओमप्रकाश ने तबले पर उनकी संगत की। गिडवानी साहब कुछ निर्णय नहीं कर पाये। सेठ जी के आने पर फिर देखा जायेगा, यही निश्चय हुआ। जंग बहादुर लौट गये। धीरेधीरे मामला ठण्डा पड़ गया। जंगबहादुर भी उस समय पारिवारिक समस्याओं में उलझे थे। उनको भी घर जाने की जल्दी थी। जिस गीत की धुन जंगबहादुर ने बनाई थी उसकी स्थायी पंक्ति थी-'मेरे मन में कोई बोले'। उनकी बनाई धुनआज भी मेरे मन में गूँजती रहती है। गिडवानी साहब के पास अपनी कोई स्वतंत्रा निर्णय करने की बुद्धि का अभाव था। बाद में मास्टर अमरनाथ ने इस गीत की जो तर्ज बनाई वह मुझे कत्तई अच्छी नहीं लगी। ओमप्रकाश जो तबले पर संगत कर रहे थे, वही थे जो हास्य अभिनेताके रूप में फिल्म जगत में विख्यात हैं। सुप्रसिद्ध खलनायक प्राण भी 'कैसे कहूँ' में एक बहुत छोटी भूमिका अदा कर रहे थे। श्री गजानन जागीरदार की भूमिका प्रमुख थी। हुसेन इसके नायक थे। रागिनी जो दासी में असफल साबित हो चुकी थी, इसकी नायिका थीं। बेबी अख्तर साइड में थी। 'जर्मीदार' फिल्म की ख्याति से विभूषित मोती बी गिडवानी इसके निर्देशक और 'दासी' फिल्म से विख्यात मास्टर अमरनाथ इसके संगीत निर्देशक थे। सुप्रसिद्ध संगीत निर्देशक पण्डित हुस्नलाल भगत राम इसी मास्टर अमरनाथ के छोटे भाई थे। 'कैसे कहूँ' फिल्म पंचोली आर्ट पिक्चर्स कीनामी फिल्म थी। इसके असफल या कमजोर होने की कोई सूरत नहीं थी। इसकी बड़ी जोरदार चर्चा थी। मैं इसी पिफल्म का गीत लेखक था।

श्री हरिकृष्ण प्रेमी इसके संवाद लेखक थे। मगरउनके लिखे संवाद गिडवानी साहब को पसंद नहीं थे। अतएव उनके स्थान पर संवाद लिखने के लिए उर्दू कहानीकार अख्तर हुसेन रायपुरी को उन्होंने नियुक्त कर लिया। मगर प्रेमी जी का सम्पर्क कम्पनी के साथ पूर्ववत बना रहा। यदि इस प्रकार का संबंध न बना रहता तो वे कैसे मुझको परेशान करते। मेरे लिखे प्रत्येक गीत पर दूसरे-तीसरे गीतकारों को गीत के साथ भेजते रहते थे। आगे चलकर वे स्वयं ही मेरे प्रतिद्वन्द्वी बन गये। इन दिनों भगवानप्रसाद त्रिपाठी मेरे अनन्य मित्र थे। वे मेरे गांव बरेजी से दो तीन किलोमीटर उत्तर कुँवर लोगों के डेहरी ग्राम के निवासी थे। सामान्य शिक्षा दीक्षा के उपरान्त व्यक्तिगत संस्थाओं के तत्वावधान में संचालित, सभी श्रेणी की परीक्षायें पास कर, विभिन्न नई नई उपाधियों के अधिकारी बने फिरते थे। उन्हें कविता, लेख औरपत्रकारिता का शौक था। अमेठी और लखनऊ



में कुछ दिनों तक 'मनस्वी' 'आर्यमित्र' 'अधिकार' आदि पत्रों का उन्होंने सम्पादन किया। वे लाहौर आर्य समाज मन्दिर में कोई काम पाकर जमे हुए थे। जब मैं लाहौर पहुँचा तो वे जम्मू (कश्मीर) की एक हिन्दी मासिक पत्रिका के सम्पादकीय विभाग में सहायक हो गये थे। उनकी और हमारी काया छाया की संगति थी। उनके पास मुझे प्रायः जम्मू जाना पड़ता था और मेरे कारण वे प्रायः लाहौर आते रहते थे। मेरी कविता की दुनिया उनसे आबाद रहा करती थी। मेरी कविताएं वे अपने पत्रों एवं पत्रिकाओं में बड़े उत्साह से प्रकाशित करते थे तथा नियमित ढंग से साहित्यिक गोष्ठियों का आयोजन मेरे लिए किया करते थे। जम्मू में मेरे प्रशंसकों एवं समर्थकों का एक विशेष वर्ग तैयार हो गया था। 'गुलाब' नामक एक साप्ताहिक पत्र के मुख पृष्ठ पर मेरा भव्य रंगीन चित्र और मेरा आत्मकथ्य उसमें प्रकाशित हुआ था। उर्दू के एक शायरमित्र श्री सुमन, जो अब दिवंगत हो गये होंगे, मेरे प्रबल समर्थक थे। मेरी गोष्ठी सप्ताह भर अनवरत चला करती थी। जम्मू का प्राकृतिक सौन्दर्य, वहां के महाराज का राजप्रासादीय परिवेश, दूध-दही-घी की प्रचुरता, हिमालय की बिखरी रजत शृंगमालायें जो भगवान भास्कर की रंगीन रश्मियों से विभिन्न रंगों में झलकती रहती थीं, मेरेमन को मुग्ध किए रहती थीं।

जम्मू से विदा होते समय एक बार मेरी आँखें छलक गयीं थीं और जब जम्मू स्टेशन से मुझे लेकर ट्रेन लाहौर के लिए चल पड़ी तो मैं पफपफक कर रो पड़ा और सिसकते हुए एक गीत लिखा-

करुण नाम जम्मू,

मधुर नाम जम्मू ।

नयन का समुन्दर मथूं, मथ न पाऊँ
बिरह की लहर पर बहूँ बह न पाऊँ
समझ में न आता रहूँ या कि जाऊँ
तुम्हारे हृदय की व्यथा में तड़पते
पिघलते कसकते व्यथित प्राण जम्मू ।

करुण नाम ----

व्यथा इस हृदय की कहूँ, कह न पाऊँ
जलन आँसुवों की सहूँ, सह न पाऊँ
बताओ, तुम्हें किस तरह छोड़ जाऊँ
सुधा प्यार की थी तुम्हारी गरजते
बरसते, तरसते द्रवित प्राण जम्मू ।





करुण नाम----

अधर बन्द कर मैं तुम्हें ही पुकारूं
 नयन बन्द कर आरती मैं उतारूं
 तुम्हारे चरन पर सजल पुष्प वारूं
 हंसी सींचकर आंसुवों से सिहरते
 सकुचते विहलते, दुखित प्राण जम्मू

करुण नाम----

बड़ी कविता है। जम्मू आज भी कसकता है। लाहौर से मुल्तान, मुल्तान से जम्मू। जम्मू का छोटा पहाड़ी स्टेशन, श्रीनगर को जाने वाली उसकी सुरम्य प्रशस्त सड़क, पर्वत उपत्यकायें, बिखरी शृंगमालायें, राजकीय भव्यताएं, प्राकृतिक दिव्यताएं, दूध दही की सरिताएं, साहित्य सरिता की तरंग मालायें, जम्मू के साहित्य प्रेमियों की कोमल भावनाएं, मधुर कामनाएं आज भी एक बार नस नस में विद्युत वेग प्रवाहित कर देती हैं। जम्मू में हमें अपने गौरवशाली महामहिम भारत का दर्शन होता था। बरेजी, बरहज, बनारस से जम्मू किंचित भिन्न नहीं था। किन्तु आज तो बरेजी, बरेजी से ही भिन्न हो गया है। बरहज बरहज से ही अन्य हो गया है। मैं अपने से ही पराया हो गया हूँ। कहां हूँ, कौन हूँ, किसका हूँ ? आज तो यह प्रश्न और भी अधिक तीखा हो उठा है। न इस प्रश्न का उत्तर कभी मिला है किसी को, न मिलेगा।

भगवान प्रसाद त्रिपाठी की संगत में लाहौर मेरे लिए बरहज और बनारस के समान हो गया। अनेक ऐसे स्थल त्रिपाठी जी के कारण मुझे सहज ही सुलभ हो गये थे जिनकी सुखद व्यवस्था में मेरी कविता लता हमेशा हरी-भरी रहती थी। लिफाफा फैक्ट्री के प्रबन्धक श्री रणवीर बिहारी सेठ से मेरा परिचय भगवान प्रसाद त्रिपाठी के ही द्वारा कराया गया। भगवान प्रसाद त्रिपाठी यहां भी काम करते थे। रणवीर बिहारी सेठ खत्री थे। उनको हिन्दी साहित्य और कविता से बड़ा प्रेम था। वे मेरी कवितायें सुनकर झूम उठते थे। हम तीनों लाहौर की सड़कों पर कविता का नशा पीकर घण्टों विचरते रहते थे। इसी क्रम में अनारकली मुहल्ले के आस पास एक दूसरे पंजाबी परिवार से परिचय हो गया जिसके मालिक थे श्री विद्यारत्न। विद्यारत्न जी सज्जनता की प्रतिमूर्ति थे। उनकी धर्मपत्नी साक्षात् देवी प्रतीत होती थीं। उनका घर सुख और शान्ति का आगार था। हम लोगों की काव्य गोष्ठियां कभी विद्यारत्न जी के घर तो कभी रणवीर बिहारी जी के घर घण्टों हुआ करती थीं। दोबार उदयशंकर जी भट्ट के निवास स्थान पर भी उनके दर्शनार्थ हम लोग गये। भट्ट जी ने बड़े प्रेम से हम लोगों की बातें सुनीं। मैंने उनको अपनी कविता सुनाई थी-



स्वप्न जले / आशा जली
जल गयी भाषा ।
काव्य की जल गयी भाषा ।
आँखों में मेरी दीप जले
किसी के रूप की छाया तले
मन में मेरे अन्धकार
दीप शिखा रही पुकार ।
आवो, प्रिय एक बार ।

भट्ट जी यह कविता सुनकर बहुत प्रसन्न हुए थे। गीत लेखन कार्य के बाद का हमारा सब समय साहित्य चर्चा, काव्य रचना तथा काव्य गोष्ठी में बीतता था। सुमन जी, विद्यारत्न जी, रणवीर बिहारी सेठ के घर कविताओं के आश्रयस्थल थे। भगवान प्रसाद त्रिपाठी उन्मुक्त किरण थे जिनसे मैं सर्वदा प्रकाशित होता रहता था। भगवान ने मेरा साथ बम्बई तक दिया और अन्ततः वर्धा के स्थायी निवासी हो गये। बहुत ठोकरे उन्होंने भी खायी। किन्तु अपेक्षित आराम के साथ अभी भी सक्रिय और कर्मठ हैं। जीवन में सफलता प्राप्त पत्रकार भगवान प्रसाद त्रिपाठी अपने पीछे भरा-पूरा परिवार छोड़ कर अब अपूर्ण आयु में दिवंगत हो चुके हैं।

जम्मू की एक काव्य गोष्ठी में मेरे एक प्रिय श्रोता ने, जो एक बड़े सम्पन्न घरके कुलदीपक थे, सबके प्रति मेरा समान व्यवहार देखकर प्रश्न किया-मोती जी क्या उस फटेहाल गरीब युवक के प्रति भी आपके मन में वे ही भाव हैं जो मेरे प्रति हैं ? मैंने उत्तर दिया कि कविता में तो इसप्रकार का भेद नहीं होता है। कविता की पंक्तियों में आप जैसे और उस जैसे असंख्य व्यक्तियों के लिए पर्याप्त स्थान है। इनसे स्थान भर जाने के उपरान्त भी अभी और अनन्त विस्तार शेष रह जाता है। वह बेचारा मेरी बात समझ नहीं पाया। उसका कौतूहल बड़ा ही संकुचित और कुछ अन्य प्रकार का था। लेकिन उसके इस प्रश्न ने मेरे साधारणीकरण में और भी मदद पहुँचायी। मेरी दृष्टि में न कोई लघु रहा, न कोई महान। किन्तु लघु लघु ही होते हैं और महानमहान ही रहते हैं। जो काव्यसूत्र इन दोनों को समान धरातल पर लाता है उसका लौकिक मूल्यांकन स्थूल दृष्टि से करना भूल है। मगर सिद्धान्त में यह भूल भले न हो, व्यवहार में और जीवन के स्थूल व्यापार में यह कोई अर्थ नहीं रखता। बहुत बाद में मुड़कर पीछे की ओर देखने पर मुझे अपनी इस व्यावहारिक भूल का पता चला। एक या दो स्थल की यह बात नहीं थी। मैं पग पग पर ऐसी भूलें करता था और आदमी, आदमी में फर्क नहीं मानता था। जिस भाव से मैं सेठ दलसुख एम पंचोली के साथ



मिलता था उसी भाव से मैं उनके ड्राइवर से भी मिलता था। कभी कभी घण्टों उनके ड्राइवर के पास बैठा उसके सुख-दुख की कहानी सुनता और अपनी कहानी सुनाता रहता था उसे। मैंने यहकभी नहीं अनुभव किया कि मैं महान हूँ और महान महान व्यक्तियों के मण्डल में सुस्थिर हूँ। मुझे ड्राइवरऔर मजदूर तथा छोटे छोटे कर्मचारियों को लिफ्ट नहीं देना चाहिए। बड़ा हूँ,बड़ों में ही मुझे रहना चाहिए। स्टूडियो के एक अत्यन्त सामान्य कर्मचारी से, जो मामूली पेंटर था, मेरी बड़ी रब्त-जब्त हो गयी। उसका नाम न जाने क्या था। मगर लोग उसे बहशी कहते थे। चाय के प्यालों पर, पान के बीड़ोंपर, बीड़ी के धुंओं के मध्य मेरी कविताएं सुन सुनकर बहशी वाकई बहशी हो जाता था। मैं इस बहशीका बहशी हो गया था। कम्पनी के सबसे बड़े मालिक को भी कविता सुनाऊँ और सड़क पर चलने वाले साधारण से साधारण आदमी को भी। स्वतन्त्र रहकर तो कुछ भी कर सकता था किन्तु कम्पनी का नौकर होकर अपने इस आवरण से कम्पनी के अनुशासन को प्रभावित करना मेरे लिए उचित नहीं था। इसमें मेरी ही हानि थी। ऐसी घटना तो सेठ जी के साथ मेरी प्रथम भेंट-वार्ता के तीसरे दिनही घटी थी जब सेठ जी ने श्री हरिकृष्ण प्रेमी से मेरा परिचय कराया था। तीन दिनों से मुझपर रीझेहुए सेठ जी की नजरों में मैं कोई अमूल्य निधि था। इसी भाव से वे मुझको सम्हाले हुए थे। हरिकृष्ण प्रेमी का मूल्यांकन वे कर चुके थे। मुझे क्या पता कि सेठ जी प्रेमी जी को क्या समझते हैं ? ऐसा भी सम्भव था कि सेठ जी की नजरों में प्रेमी जी के प्रति कोई ऊँचा भाव न हो। मगर मैंने जैसे ही यह माना कि प्रेमी जी से मेरा परिचय सेठ जी करा रहे हैं मैं तपाक से अपनी कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ। यह व्यावहारिक भूल थी मेरी। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था। अपनी गुरुता कम से कम उस समय तो बनाए ही रखनी चाहिए थी।

मुझे अपनी इस भूल का भुगतान बड़े गहरे में करना पड़ा, भीतर से भी और बाहर से भी। मगर धीरे धीरे। ये ही प्रेमी जी मुझे लाहौर से उखाड़ फेंकने के लिए जी जान से लग गए। ये ही प्रेमी जी कैसे कैसे बाद में लेखन कार्य से हटा दिए गए। उसी सेठ दलसुख एस पंचोली की दृष्टि आगे चलकर मेरे प्रति निरपेक्ष हो गयी। मेरा सामान्य रूप नहीं मेरा विशेष रूप ही उन्हें प्रिय था। मेकलोड रोड पर ही ‘हिन्दी मिलाप’ का कार्यालय था। एक दिन सन्ध्या समय भगवान प्रसाद त्रिपाठी के साथ मैं ‘हिन्दी मिलाप’ के सम्पादकीय विभाग में जा पहुँचा कि यहां कुछ सहधर्मी साथी मिल जायेंगे और परिचय का विस्तार होगा। कुछ सहायक सम्पादक विराजमान थे। प्रधान सम्पादककार्यालय से जा चुके थे। मैंने जाते ही पूछा, कृपया बताएं प्रधान सम्पादक जी हैं कार्यालय में ? उपस्थित बन्धुओं में से एक ने उत्तर दिया ‘नहीं’। मैंने फिर पूछा कि क्या उनके उपरान्तजो कार्यभार सम्हालते हैं वे हैं ? उसी बन्धु ने कहा ‘नहीं’ कहिए क्या बात है ? आप कहां से आ रहे हैं ?





मैंने कहा मैं काशी से आ रहा हूँ और मैं सम्पादकीय विभाग में कोई काम चाहता हूँ। फिर उस भाई ने पूछा-‘आपको सम्पादकीय कार्य का कुछ अनुभव है ?’ मैंने कहा-‘हाँ ! मैंने ‘आज’ और ‘संसार’ के सम्पादकीय विभाग में कार्य किया है।’ प्रश्न- ‘आपका शुभ नाम ?’ मैंने उत्तर दिया-‘मोतीलाल उपाध्याया’ पुनः प्रश्न- ‘क्या आप मोती बीए तो नहीं हैं ?’ मैंने स्वीकृतिसूचक मुद्रा बनाई और कुछ संकोच से फिर झुका लिया। सभी बन्धु एक साथ ही स्वागत में उठ खड़े हुए। प्रश्नकर्ता मेरे अनन्य मित्रा श्री अनन्त मराल शास्त्री थे जो ‘आजकल’ पत्रिका का सम्पादन कार्य करने के उपरान्त मध्य प्रदेश में किसी अत्यन्त ऊँचे राजकीय पद से सम्भवतः सेवानिवृत्त हो चुके हैं। इनका और बटुकदेव जी का घर लाहौर में मेरा अन्य आश्रय था। ‘मराल’ जी के एक सम्बन्धी ‘करुण’ जी थे जो प्रायः साथ रहते थे। दुनिया और जीवन से उन्हें बड़ी शिकायत थी और वे प्रायः आक्रोश से भरेरहा करते थे। उस समय घर में एक वृद्धा महिला थी जिन्हें मराल जी चाची कहते थे। वे दया, ममता और करुणा की पुलती थीं। कलकत्ते से मराल जी के एक सम्बन्धी जवाहरलाल शर्मा भी अपने संघर्षशील जीवन को ठेलते हुए कुछ दिनों के लिए यहाँ पर आकर स्थिर हो गये थे। वे काशी के दारानगर के पं भोलानाथ तिवारी के अभिन्न थे जिनके यहाँ मैं ‘संसार’ में कार्य करते समय रह चुका था। मेरी कविताओं के शर्मा जी बड़े भक्त थे। कलकत्ते में सुश्री गीता और कलावती दो बहिनों के मुख से किसी पार्टी में ‘मैं गीत क्या सुनाऊँ’ वे सुनकर मेरे प्रति पूर्ण आकृष्ट थे। यही शर्मा जी बम्बई में सनराइज पिक्चर्स के मालिक श्री बी एम व्यास के यहाँ प्रोडक्शन मैनेजर हुए और मेरे लिए बम्बई के एक आधार साबित हुए। मराल जी के सखा श्री बटुकदेव जी बड़े ही परिश्रमी, निश्छल हृदय के प्रतिभासम्पन्न युवक थे। इनके निवास पर भी मैं प्रायः रहा करता था। बटुकदेव जी के हृदय में मेरी कविताओं के प्रति और मेरे प्रति भी बड़ा सम्मान का भाव रहा करता था। श्री क्षेमचन्द्र सुमन इन दिनों लाहौर में फरारी का जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनसे मेरी धनिष्ठता बढ़ गयी थी। वे भी मेरी साहित्यिक मंडली के सदस्य हो गये थे। लाहौर की सड़कों और अनारकली की गलियों को इन सभी मित्रों के साथ अपनी कविताओं में गुंजित किए रहता था। कोरस सा होता रहता था। चलता फिरता मैं सबके गले का हार बना रहता था।

डाली डाली में हरसिंगार
फूला था बहती थी बयार
हम तुम दोनों थे झूम रहे
उपवन में छायी थी बहार ।

लाहौर को इस प्रकार मैं पूरा आत्मसात करता जा रहा था। अनारकली मुहल्ले में





कचौड़ी पूँड़ी सब्जी और गाजर के अचार के बाद लाहौरी ग्लास में कभी दूध की और कभी दही की लस्सी पीकर दिन भर के कार्य के लिए मैं स्वतंत्रा हो जाया करता था। मैं किसी गीतकार कम लाहौर का एक साहित्यिक जीवन बनता जा रहा था। यह सब कुछ भगवान प्रसाद त्रिपाठी के कारण था। गोरखपुर में पिण्डी के श्री शशिमौलि पाठक, काशी में अर्जुन भाई और शम्भुनाथ सिंह, लखनऊ, लाहौर, जम्मू, बम्बई, वर्धा में भगवान प्रसाद त्रिपाठी मेरे साहित्यिक अस्तित्व के सबल आधार थे जिनके सहारे मेरी कविता-लता हमेशा हरीभरी और पल्लवित पुष्टि होती रही।

लाहौर में धोती-कुर्ता पहन कर सड़क पर चलना लाहौर वालों के लिए एक अनोखा दृश्य था। यहां के सामान्यजन लम्बा कुर्ता और सलवार तथा पगड़ धारण करते थे, पेशावरी चप्पल के साथ। विशिष्टजन सूट सज्जित रहते थे। श्री हरिकृष्ण प्रेमी खादी की धोती, खादी का कुर्ता और खादी का जैकेट पहनते थे। मैं भी धोती कुर्ता वाला ही था और भगवान प्रसाद त्रिपाठी भी ऐसे ही थे। कपड़े की दुकानों में खोजने से भी धोती मिलती नहीं थी। बड़ी मुश्किल से एक दूकान में धोती मिली तो इतनी मोटी और पनहदार कि वह मेरे पहनने योग्य नहीं थी। फिर भी मैं उसे पहनता था। इससे ऊब कर मैंने भी बढ़िया सूट बनवाने का निश्चय किया और भगवान प्रसाद त्रिपाठी की राय से उत्तम सूट का कपड़ा देखा गया। मर्सेराइज्ड कार्टराइज कपड़े का उनदिनों काफी प्रचलन था। उसका फुलपाइण्ट पहने लोगों को देखकर मैं बहुत ही खुश होता था। मैंने सोचा- चलो इसी बेहतरीन कपड़े का मेरा पूरा सूट बनेगा, यानी फुल पाइण्ट भी और कोट भी। इसी सूटको पहनकर स्टूडियो में मैं अपनी छवि बिखेरने लगा। दो-चार दिन बाद लाहौर के कुछ उर्दू दॉअदीब लोग स्टूडियो में तशरीफ लाए। उनमें से एक आध शायर भी थे। उस दिन हम धोती कुर्ता में थे। प्रेमीजी के साथ हम लोग स्टूडियो से निकलकर शहर की ओर चलने लगे। सड़क पर प्रेमी जी ने उनसबसे मेरा परिचय कराना शुरू किया। उनमें से एक बोला-हां, हां मैं समझ गया। पिछले दिनों जब मैं स्टूडियो में आया था तो आप दिखाई पड़े थे। उस दिन आप कार्टराइज सूट पहने हुए थे। उनके ऐसा कहने पर सभी अदीब व्यंग्यात्मक ढंग से हंस पड़े। प्रेमी जी की हँसी देखने के काबिल थी। मैं उन सभी की उस हँसी के बनावे में गिर पड़ा। बाद में मैंने अपने मित्र सरदार एस रणजीत से उनकी इस हँसी का रहस्य पूछा तो उन्होंने बतलाया कि कार्टराइज का महज फुलपाइण्ट बन सकता है। उसका कोट नहीं बनवाया जाता है। यह कपड़ा सिनेमाघरों की गद्दीदार कुर्सियों के खोल बनवाने के काम आता है। इसका सूट पहनना हास्यास्पद है। मैंने उसी दिन से वह सूट पहनना छोड़ दिया। कपड़ों के मुत्तलिक मेरी अल्पज्ञता ने मेरी बहुत रक्षा की है। चिकने कपड़ों और भड़कीली पोशाक से मेरी कभी नहीं बनी। जो लोग अपने को इस प्रकार सजाते हैं वे या तो कृत्रिम होते हैं



या हीन मनोवृत्ति के। जब भी मैं कपड़ों के द्वारा अपने को सुशोभित करने का प्रयत्न करता था हमेशा इसी प्रकार की घटना होती थी। मैंने अपनी इसी अल्पज्ञता के वशीभूत रेशम का कुर्ता, रेशम का सलवार, रेशम का जवाहर जैकेट बनवाया। इसे पहनकर जब कमरे से बाहर आया तो देखते ही दोस्तों ने टोका कि यह लड़कियों की पोशाक क्यों पहन रखी है। रेशम की सलवार लड़कियां पहनती हैं। मैंने इसको भी कभी नहीं पहना। इस घटना के कुछ महीने बाद जब मैं लाहौर से भगवान प्रसाद त्रिपाठी के साथ अपनेगांव आ रहा था तो लखनऊ स्टेशन पर मेरा मनी बैग ही गिरहकट ने उड़ा लिया। मैं दुःखी होकर अपने भाई साहब के पास मोहनलालगंज चला आया। दो दिन रहकर वहां से अपने काशी के मित्रों से भेंट मुलाकात करने की लालसा से काशी का टिकट लिया। संयोगसे ट्रेन में मेरे पुराने बन्धु निरंकारदेव सेवक मिल गये। उनसे इस विश्वास से किसबसे अब भेंट हो गयी, इन्हीं के साथ काशी चले चलेंगे, मैं आराम करने लगा। मुझे नींद आ गई। सबेरे मुझे जगाया गया तो मैं हड़बड़ाकर उठा और अपने लोगों को खोजने लगा। कहीं पर कोई नहीं दीख पड़ा। मैं बड़ा दुखी हुआ। मुझे अपने हाल पर रोना आ गया। किन्तु शीघ्र ही सम्हल गया। यही सोचने लगा कि यह दुनिया ही ऐसी है। यदि सबको चला ही जाना था तो मुझे जगाकर उन लोगों ने क्यों नहीं अपने साथ ले लिया। उन्हें तो यह पता था कि मात्र उन्हीं लोगों के लिए मैं अनिमंत्रित इस सम्मेलन में पहुँचा था। काशी विश्वनाथ को साक्षी देकर कहता हूँ कि मंच के कवियों के प्रति मेरे मन में असम्मान का भाव इसी एक घटना से उत्पन्न हुआ। मंच के कवि और कुछ भी हों, मनुष्य नहीं हैं और हीन कोटि के व्यवसायी हैं। शम्भुनाथ सिंह भी इस प्रकार का व्यवहार करेंगे, यह मुझे आशा नहीं थी। मेरे कष्ट के प्रति संयोजक महोदय और विद्यालय के अन्यान्य व्यक्तियों के मन में गहरी सहानुभूति की भावना उत्पन्न हुई। वे भी समझ गये कि मारे ईर्ष्या और द्वेष के मोती जी के प्रति उन लोगों ने उपेक्षा की भावना से यह कार्य किया है। नाश्ता पानी, स्वागत सत्कार में ये लोग व्यस्त हुए और मैं भी इस जड़ावस्था से जाग कर उन्हींबेचारों की भावना के रस में प्रवाहित होने लगा। उनका विद्यालय बन्द नहीं था। पहले तो प्रत्येक कक्षा में वहां के प्रधानाचार्य और अध्यापकों ने मेरा परिचय छात्रोंसे कराया। फिर सबको एकत्र कियागया। पुनः एक सम्मेलन का स्वरूप तैयार हुआ जिसमें विशेष सम्मान के साथ उन्होंने मुझे प्रस्तुत किया और मैंने भी भाव विभोर होकर उन लोगों को जी भर कविताएं सुनाई। भावना का स्रोत कुछ इस प्रकार उमड़ा कि वहां के प्रत्येक व्यक्ति के मन में मेरे प्रति मोह का भाव पैदा हो गया। सबने मुझे इक्का पर जब विदा किया तो लग रहा था जैसे सबकी आंखें मिलकर एक बहती हुई नदी हो गयी हों और मैं उनकी धारा में डूबा जा रहा हूँ। मैंने क्या खोया और क्या पाया यह आज भी एक प्रश्नचिन्ह के समान है।



मेकलोड रोड पर मानसरोवर होटल के आसपास उर्दू पत्रिका का कार्यालय था। शादीलाल जी उस पत्रिका के सर्वेसर्वा थे। मैं प्रायः यहाँ भी आता जाता रहता था। यहाँ एक लम्बा गोरा नवजवान भी शादीलाल जी से मिलने आता था और देर तक रहा करता तथा समझदारी की बातें किया करता था। उसका व्यक्तित्व बड़ा मोहक और प्रभावशाली था। इस व्यक्ति के परिवेश से मैं इतना प्रभावित था कि उसके बारे में कल्पना करने लगता था कि यह व्यक्ति कभीन कभी कोई बड़ा काम जखर करेगा क्योंकि वह प्रायः वहाँ खड़ा-खड़ा क्षितिज में काफी देर तक कुछ खोजतासा प्रतीत होता था। इस व्यक्ति का नाम है-बी.आर. चोपड़ा जिसने फ़िल्म जगत में अपने नाम का सिक्का जारी करके उसे चला ही दिया। चोपड़ा साहब बहुत ही तीव्र बुद्धि के प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। मेरे सम्बन्ध में उनको पूरी जानकारी थी। वे मुझ पर सहज स्नेह रखते थे। शादीलाल जी और चोपड़ा साहब से मिलने पर मुझे बड़ी खुशी होती थी और इसी खुशी के निमित्त शादीलाल जी के कार्यालय की ओर मेरे पांव अपने आप बढ़ जाया करते थे। पाकिस्तान बन जाने पर ये लोगबम्बई चले आये। नए सिरे से उनका जीवन संघर्ष शुरू हुआ। इस संघर्ष में ये लोग पूर्ण सफल रहे काफी ठोकरें खाने के बाद।

माहेश्वरी पिक्चर्स और तलवार प्रोडक्शन्स के विशिष्ट व्यक्तियों से भी जान पहचान होने लगी थी। लाहौर से विदा होने के समय मैंने जंगबहादुर शर्मा को संगीत निर्देशक के रूप में माहेश्वरी पिक्चर्स में बुलवाया था। उनको अनुपम घटक के साथ भागीदारी में संगीत निर्देशन का काम मिला था। अनुपम घटक से जंगबहादुर की नहीं निभी। इसलिए वे पुनः इस कार्य से विरत होकर लखनऊ चले गये। मैंने भी लाहौर से रवाना होने के वक्त कुछ गीत लाहौर की अन्य फ़िल्म कम्पनियों को देने का विचार किया था। पंचोली आर्ट पिक्चर्स से बाहर की दुनिया में भी मेरी पैठ होने लगी थी। स्टूडियो में दिन-रात काम होता रहता था। मैं या तो अपने कमरे में बैठा कविताएं लिखता या फ़िल्म के लिए गीत लिखता या कुछ पढ़ता। मैंने लाहौर में रहकर विविध प्रकार की कविताएं लिखी थी। अनेक नए प्रयोग किए। हिन्दी, खड़ी बोली में मुझे कुछ करुवता का अनुभव होता था। बंगला काव्य की मधुरिमा से मैं विशेष प्रभावित रहता था। हिन्दी खड़ी बोली के शब्दों को तोड़ कर मैंने उनके बंगला उच्चारण में लिखने-पढ़ने की एक शैली अपनानी शुरू की यथा-

झंकृत हो उठे,
मेरे हृदय की वीणा का एक तार
झंकृत हो हो उठे—
सान्ध्य गगन में उदित एक तारा





कवन बन बीच तुमने मुझे पुकारा
 सान्ध्य गगन तले
 किन्तु लहर चले
 मेरे नयन बीच बहती अरुण धारा ।
 कवन बन बीच----

रेखांकित शब्दों को बंगला शब्दों की चाशनी देकर पढ़िए देखिए कैसा सुख प्राप्त होता है। इसी प्रकार
 के दो-तीन गीत और लिखे। यथा-

1. स्वप्न जले
 आशा जली
 जल गयी भाषा
 काव्य की जल गयी भाषा।
2. गीत लिखो रे मन
 गीत लिखो।

किन्तु इस शैली को अधिक प्रोत्साहन नहीं मिला। वैसे मैंने इसका अपनी ओर से अधिक प्रचार भी
 नहीं किया। इसी भाँति मैंने अत्यन्त ध्वन्यात्मक शब्दों को एक विशेष टेक्निक में संग्रहित करने का
 विचार किया कि देखें अर्थवत्ता एवं व्यंजना के साथ कविता की कोई सूरत इस प्रयत्न से उत्पन्न
 होती है या नहीं। यथा-

1. तव चरणे
 तव चरण तले
 नूपुर स्वर सरिता बह चले।
2. रुक-रुक
 क्षण भर
 अश्रु नयन के।
3. गा जीवन के गीत लहर पर
 जाए जीवन बीत लहर पर।

इछरा नहर का साथ एक सड़क से था जिसकी बगल में पंचोली आर्ट का स्टूडियो था। सुबह शाम मैं
 नहर के किनारे टहलता था और उसमें स्नान भी करता था। नहर में पानी मेरी नाक के बराबरथा।
 उसमें मेरे झूबने की कोई आशंका नहीं थी। मैं बहुत मामूली तैरना जानता था।



लेकिन नहर में उछलना कूदना, धूम-चौकड़ी मचाना कुछ उठा नहीं रखता था। थोड़ी थोड़ी दूर पर रविवार के दिन नहर के किनारे मेला सा लग जाया करता था। लाहौर के लोग, जिनमें अधिकांश सिख समुदाय होता था नहर के किनारे खूब रंग लूटते थे। सिक्खों के किशोर युवक जब नहर के प्रवाह में अपने बाल खोल देते थे तो विलक्षण रसोद्रेक होने लगता था। मैं भी अपनी बनियान उतार फेंकता और अण्डरवियर पहने धारा में कूद पड़ता था। नहर के साथ मेरा रब्त-जब्त इतना बढ़ गया कि इसने आसक्ति का रूप धारण कर लिया। अपने कमरे में आकर मैं नहर का मानवीकरण कर डालता था और उसकी काल्पनिक मूर्ति को सम्बोधित करके कविताएं लिखा करता था। कभी सीधे बात करता, कभी उसको अपने घर आने का निमंत्रण देता और कभी उसके वियोग में आंसू बहाने लगता-

नहर मुझको लेकर किधर जा रही हो
कड़ी गीत की कौन सी गा रही हो ।

नहर, लहर के रथ पर चढ़कर
मेरे घर भी आना।

आज बहुत दिन बाद नहर
तुम आई मुझको याद ।

‘लाहौर की नहर’ नाम से एक कविता संग्रह तैयार हो गया। इन कविताओं ने लाहौर की इछरा नहर को मेरी स्मृति में इस प्रकार जड़ दिया है कि मैं अभी तक और जब तक जीवित रहूँगा तब तक गोता लगाता रहूँगा। वह मुझे याद करे न करे, मैं उसे भुला नहीं सकता। मेरा पावस, मेरी दीवाली, मेरा हेमन्त, मेरा बसन्त इसी स्टूडियो के कमरे में कविता के साथ सार्थक बना रहता था। लाहौर में वर्षा भी जम कर होती है। कड़ाके की सर्दी भी पड़ती है और कसकर तपन भी होती है। मौसम की सारी ज्यादतियों को हम और हमारी कविता हँसकर उड़ा देते थे। ‘आँसू डूबे गीत’ का जन्म पावस सन् 1944 में हुआ था। ‘बादलिका’ भी इसी मौसम में सयानी हुई। दीवाली की वह रात क्या कभी भुलाई जा सकती है जब सारी रात हम दोनों ;कवि और कविताछ्छ दीए में स्नेह उड़ेल कर उसकी बाती जलाने के लिए माचिस की तीली से खिसकाते रहे। कविता से शाम हुई थी और कविता से ही सुबह। दीवाली की वह रात गीतों से जगमगा उठी थी। वैसे तो कमरे में एक बल्ब ही जल रहा था मगर आँखों में असंख्य जल कण और कागज पर उनके अवतरित अनेक आकार आज भी मेरे पास बैठकर इन दिनों में उन दिनों की चुटकी लेते रहते हैं-

मेरी भी है आज दीवाली





आत्मकथा मोती बीए - छाया लोक की सैर



मन के दीप जलाने दो तुम
भीतर दीप जले बाहर के सब
बुझ जाने दो तुम ।

+ +

तुमने दिया जलाया होगा
अंधियारी मंडरायी होगी
अंखिया भर भर आयी होगी
माटी के दीपक में तुमने जब
प्रकाश पहुंचाया होगा ।

तुमने दिया----

कोई भी स्मृति का ज्वाला कण
ज्वलित हो गया होगा तन-मन
दीप बने होंगे युग लोचन
पता नहीं दृग जल को तुमने
कैसे स्नेह बनाया होगा ।

तुमने दिया----

मन नभ में उर की धरती पर
चलता होगा प्रियतम पग धर
दूर देश उसका अगम डगर
दीपित प्राण-शिखा से तुमने
प्रिय को पथ दिखलाया होगा ।

तुमने दिया----

+ +

मन अंधियारा, तन उजियारा
बाट जोहती दीप जलाकर
जल में दीप बहाना चाहा
दीप दान, ज्योति दान, स्नेह दान दो
तन-मन जग मग जग मग
श्रभ बिहान हो।



दिया बुझाओ, दिया बुझाओ
 जब तक बहल सका बहलाया
 अब तक पागल मन भरमाया
 यह दिखलाया, वह दिखलाया
 अरे निर्दयी, एक दुखी के लिए
 न इतने दिये जलाओ ।
 दिया बुझाओ ।

मेरी ही उम्र का एक पंजाबी युवक श्रीकृष्ण मलिक जो तीसरे नम्बर का सहायक निर्देशक था, मेरा पक्का दोस्त हो गया था। मुझसे प्रेरित होकर उसने स्वयं कविता लेखन भी शुरू कर दिया था। उर्दू के शायर 'तनवीर नक्वी' की शायरी की वह मुझसे बड़ी तारीफ करता रहता था। उनका दीवान भी उसने मुझे दिखलाया था और उसके कई उनवान पढ़कर सुनाया था। 'तनवीर नक्वी' से मैं बहुत प्रभावित हुआ था। श्रीकृष्ण मेरी कवितायें अपनी डायरी में नोट करता था और जब तब गुनगुनाया करता था। आजकल बम्बई में कैमरा के स्पेशल इफेक्ट को लेकर जमा हुआ है। उसने दो-तीन फिल्म भी प्रोड्यूस किए हैं।

अब तो मेरा फिल्मी संस्कार शुरू हो ही गया था। यदि कविता का सबल आधार लेकर मैं फिल्मी क्षेत्र में उतरा न होता तो फिल्मी गीतों के अन्धकूप में गिरकर मैं भी मेढ़क जखर हो गया होता। मैंने बहुत से नामी फिल्मी गीतकारों को देखा मगर उनका सम्यक सर्वेक्षण करनेपर उनमें कहीं भी कविता देवी का आभास नहीं मिलता था। मात्र प्रदीप को छोड़कर मुझे कोई भी फिल्मी गीतकार चाहे वह शायर रहा हो या कवि, तुक्कड़ से अधिक प्रतीत नहीं हुआ। फिल्मी ग्लेमर के नशे में महाकवि के रूप में अपनी पूजा करा लेना बहुत आसान है किन्तु इस महायज्ञ केपुण्यफल का रहस्य महाकवि पं सुमित्रानन्दन, भगवती चरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा से लेकर नीलकण्ठ तिवारी और सरस्वती कुमार दीपक तक सभी जानते हैं। प्रेमचन्द के समक्ष भी यह सुन्दर फल रखा गया था किन्तु वे तत्काल ही इसका मर्म समझ गये थे। भगवती चरण वर्मा, उपेन्द्र नाथ 'अश्क', अमृतलाल नागर, भवगती प्रसाद वाजपेयी जैसे उद्भट साहित्यकार फिल्मी माया जाल में नहीं फँसे। इसका प्रबल कारण यही है कि समान सबल व्यक्तित्वों की टकराहट में खेल खिचड़ी ;बराबरछ छ हो गया। समझ बूझ कर दोनों एक दूसरे से ससम्मान पृथक हो गये। प्रदीप जी जल कमल हैं। फिल्म में थे और हैं मगर न तो कभी वे फिल्मी बने, न वे अभी फिल्मी हैं। यदि कविताओं के किरण बाण से मैं प्रताड़ित न रहा होता तो फिल्मी गीत के विष बुझे तीरों ने मेरा काम तमाम कर दिया होता।



फिल्म 'कैसे कहूँ' के लिए मेरा पहला गीत जो स्वीकृत हुआ वह था- 'हम आज चले'। जिस तरन्नुम से हम यह गीत सुनाते थे वह बड़ा प्रभावोत्पादक, ओजपूर्ण एवं मनमोहक था। जो भी इसे सुनताथा मेरे मुँह से, झूम उठता था। यह गीत मैंने 'कैसे कहूँ' के संवाद लेखक श्री अख्तर हुसेन रायपुरी को सुनाया, श्री मोती बी गिडवानी के कहने पर। इसकी आगे की पंक्ति इस प्रकार थी-

यह जिन्दगी हमारे लिए
खास बात है ।
हर रात हमारे लिए
एक नई रात है ।
चाहे न जले एक भी दिया
आसमां तले ।
हम आज चले, आज चले
आज चले ।

रायपुरी साहब ने तुरन्त एतराज पेश किया कि यह 'खास बात' कुछ समझ में नहीं आई। मैंने उन्हें बतलाया कि इसका अर्थ यह है कि यह जिन्दगी बहुत ही मूल्यवान है और हम इसे किसी महान उद्देश्य का निमित्त समझते हैं। इसे हम खाऊ, पीऊ, उड़ाऊ नहीं समझते। यह तो आम जिन्दगी हो जायेगी। हमारे लिए जिन्दगी आम नहीं बल्कि एक खास बात है। रायपुरी साहब हमारी इस व्याख्या से संतुष्ट नहीं हुए। रायपुरी साहब जहां से बोल रहे थे वह स्पष्ट हो गया। यदि ऐसे ही लोगों की हमेशा चलती रहे तो नयी प्रतिभा को कहीं भी ठहरने को स्थान नहीं मिलेगा। उनके एतराज के बावजूद यह गीत सेठ जी ने कैन्सिल नहीं किया। इस गीत को कोरस में गवाना था। अतएव बम्बई से शमशाद बेगम बुलायी गयीं जिनके नाम का सिक्का इस समय पूरे हिन्दुस्तान में जमा हुआ था। जोहरा बाई और शमशाद बेगम ने यह गीत गाया। इसे गाने के लिए एक सिक्ख लड़की सुरेन्द्र कौर भी बुलाई गई थी। उसकी आवाज बहुत आकर्षक थी मगर दुर्भाग्य से सेठ जी ने उसे चान्स नहीं दिया। सुरेन्द्र कौर ने निराश होकर अपनी कोशिश नहीं छोड़ी। बम्बई के फिल्मी मार्केट में वह अन्ततः चमकी एक दिन जब फिल्मस्तान लिमिटेड के फिल्म 'शहीद' में उसका गाया हुआ निम्नांकित गीत मुँह मुँह महक उठा-

बदनाम न हो जाए मुहब्बत का फसाना,
ऐ दर्द भरे आँसुवों आँखों में न आना ।

गुलाम हैदर ने इस पिफल्म का संगीत निर्देशन किया था। दूसरा गीत सुरेन्द्र कौर का





जो अत्यधिक लोकप्रिय हुआ वह भोजपुरी का था पिफल्म 'नदिया के पार' में जिसे मैंने लिखा था और जिसकी तर्ज सी रामचन्द्र ने बनाई थी -

अंखिया मिला के अंखिया
रोवे दिन रतिया
न भूले बतिया
भूले ना सुरतिया हो तोहार ।

फिल्म 'कैसे कहूँ' का दूसरा गीत था, सोलो हिरोइन का कि-'मेरे मन में कोई 'बोले'। इसको लाहौर की नायिका जोहरा ने गाया था। धुन बेशक मास्टर अमरनाथ की थी। इसकी तर्ज मुझे बिल्कुल अच्छी नहीं लगती थी। मगर मेरी पसन्द का वहाँ कोई प्रश्न नहीं उठता था। तीसरा गीत हीरो-हिरोइन का एक डुएट सांग (युगल गीत) था-

गीत बनो मेरी तुम
ओ मेरी गीता
गीत बनो ।

इस गीत में शब्द चयन अच्छा था। स्त्री स्वर जोहरा का और पुरुष स्वर एस.डी बातिश का। इसकी तर्ज ठण्डी थी। मगर इस गीत को कुछ खास तरह के लोगों ने बड़ा पसंद किया था। चौथा गीत था-'दामन न छोड़ देना'। यह भी नायक और नायिका का युगल गान था। इसमें भी बातिश और जोहरा ने ही स्वर दिये थे। इसकी स्थाई धुन बहुत मधुर एवं मनोमुग्धकारी थी। इसकी बन्दिश बहुत मार्मिक और हृदयग्राही थी। लेकिन अन्तरा की पंक्तियों की तर्ज में जमावट नहीं थी। यह गीत कुछ कुछ पसन्द हुआ मगर जब झमड़ा नीचे गिर जाता है तो उसके ऊपर लदी लऊकी भी धराशायी हो जाती है। जब फिल्म ही पिट गयी तो इस गीत का रोना कौन रोये। आगे चलकर दो ही तीन वर्ष के भीतर फेमस पिक्चर्स की फिल्म या तो 'प्यार की जीत' में या 'बड़ी बहन' में पंडित हुस्नलाल भगत राम ने एक बेहद प्यारे गीत की तर्ज बनाई जिसकी स्थायी पंक्ति थी-'ओ दूर जाने वाले, वादा न भूल जाना'। इसकी तर्ज ठीक वही थी जो 'दामन न छोड़ देना' की थी। भाई की चीज पर भाई का स्वाभाविक और सहज अधिकार होता है। ओ दूर जाने वाले गीत की लोकप्रियता में मैं 'दामन न छोड़ देना' की खुशबू का मजा पा जाया करता था। पछताने की, शिकायत करने की तो कोई बातही नहीं थी। इस फिल्म का पांचवां गीत था-'मन से चिन्ता की घटा, दूर हो जा।' पहले गीत की तरह यह भी तांगे में ही आउटडोर लोकेशन में गाये जाने के लिए था। यह कोरस सांग था। बातिशजोहरा और शमशाद बेगम ने इसमें प्ले बैक दिया था। मेरे प्रत्येक गीत पर कनकटवा या



बियाहकटवा की भाँति गीतकटवा अपना दांव पेंच लगाते रहते थे। प्रेमी जी इसी जोगाड़ में अपनी सम्पूर्ण साहित्यिकता का सदुपयोग किया करते थे। मगर मैं सेठ जी की कृपा के कारण इनकी अन्दरूनी मार से बचता चला आता था। इस पांचवें गीत के अवसर पर रणछोण भगवान की कृपा से भीष्म पर रथ का पहिया लेकर प्रहार करने की भावना से टूट पड़ने की भाँति प्रेमी जी स्वयं अपना गीत लेकर प्रतियोगिता में उतर आए। गिडवानी साहब को उन्होंने अपने अनुकूल बना लिया। उनके गीत के बोल घोड़े की टाप की ध्वनि से शुरू होते थे जैसे-

टप, टप, टप
घोड़े पर चढ़कर आयेंगे भइया
टप, टप, टप

(कुछ इसी प्रकार के बोल थे।) गिडवानी साहब को इस टप, टप, टप में निर्देशन कला की अनेक खूबियाँ सूझने लग गयीं। मेरा गीत सबने पसन्द कर लिया था। उसके बाद यह हालत थी। जब मुझे इस षण्यन्त्र का पता चला तो मैं बौखला उठा। प्रेमी जी को क्या कहूँ ? जहां मुझे उनके आशीर्वाद की जखरत थी वहां वे मेरे विरुद्ध स्वयं प्रतियोगिता में उतर आए। प्रेमी जी चाहते तो मुझे डांट कर लाहौर से चले जाने को कह सकते थे मगर यह क्या करने लग गये ? मुझसे प्रतियोगिता ? अख्तर हुसैन रायपुरी से उनको प्रतियोगिता करनी चाहिए थी क्योंकि संवाद लेखन का काम रायपुरी साहब ने उनसे ही हासिल किया था। मगर प्रेमी जी ने शील और संकोच, मर्यादा और सद्भावना को जैसे तिलांजलि दे दी हो। मैंने बहुत ही दुखी होकर इस सम्बन्ध में दो कविताएं लिखीं। एक तो गीत था दर्द से भरा हुआ और दूसरी आक्रोश भरे शब्दों में तीखी चीत्कार थी जिसे कविता या गीत कुछ भी नहीं कहा जा सकता था। गीत की पहली कड़ी इस प्रकार थी-

यूं किसी की राह में मत आ ।
जबकि आंखों से किसी की बह चला हो नीर
जबकि रो रो कह रहा हो व्यथित मन की पीर
यूं किसी के आंसुओं की थाह तू न लगा ।
यूं किसी की राह में मत आ ।
झर रहे तेरे अधर से जो हँसी के पफूल
डर रहा मैं हो न जाये आह कल वे धूल
यूं किसी जलती चिता की बांह में मत आ ।
यूं किसी की राह में मत आ ।



दूसरी आक्रोश भरे शब्दों वाली लम्बी कविता थी जिसके आरम्भ की पंक्तियां इस प्रकार थीं-

छीन रहा क्यों मेरी रोटी ।

तुमको भी क्या भूख लगी है
 मानवता के बर्बर से तुम
 नदी जलन की क्या उमगी है
 बुरा न होगा अगर न तुमने
 भिखमंगे की मैली झोली
 नोची, लूटी और खसोटी
 छीन रहा क्यों मेरी रोटी ।

दोनों कविताएं लेकर सेठजी से मिलने उनके मकान पर गया। सेठजी आराम कर रहे थे। समय करीब दो बजे दिन का था। सेठजी ने मुझे अपने शयन कक्ष में ही बुलवा लिया। मैंने सेठ जी से अपने हृदय की आन्तरिक वेदना कह सुनाई और पहला गीत ‘यूँ किसी की राह में मत आ’ दर्दभरे स्वर में गाकर उनको सुना दिया। सेठ जी पिछले कुछ महीनों से रोमांटिक मूड में थे और अपनी पहली पत्नी के रहते सन्तान न होने के कारण दूसरा विवाह एक पंजाबी लड़की से करना चाहते थे। उनकी पहली पत्नी गुजराती थी। सेठजी भी गुजराती थे। पंजाबी लड़की से विवाह के पक्ष में उनके कुनबे वाले नहीं थे। मगर सेठजी ने एक साहसिक कदम उठाकर यह विवाह कर लिया था और अपने साले साहब को भी कम्पनी में किसी पद पर नियुक्त कर लिया था। जिस समय मैं सेठजीको अपनी कविता सुना रहा था उस समय उनकी नयी पत्नी भी उनके पास आकर बैठ गई थीं और पहली पत्नी अपने कमरे में आराम कर रही थीं। मेरी कविता दोनों ने बड़े ध्यान से सुनी और सुनने के बाद दोनों उदास हो गईं। मैंने उनके चेहरे को गौर से देखा और उनकी इस उदासी का कारण भांपने की कोशिश करने लगा। तब तक सेठजी ने गुजराती भाषा में अपनी पत्नी से कुछकहा और उनकी पत्नी तुरन्त अपने कमरे में सोई हुई सेठजी की पहली पत्नी के पास पहुंची। वहां से लौटकर आने पर सेठजी से उनके बारे में कुछ कहा। मैंने पूछा कि देवी जी की तबियत खराब है क्या ? सेठजी ने कहा- हाँ ! कुछ अस्वस्थ हैं। सेठजी ने मेरे बारे में कुछ नहीं कहा। हाँ, चलते समय इतना जरूर कहा कि यह कविता लिखकर मुझे दे देना। दूसरे दिन स्टूडियो में सेठजी के साले साहब ने मुझसे इसी कविता के लिए भेंट की और मैंने अपने हाथ से लिखकर यह कविता उन्हें दे दी। इस घटना से प्रभावित होकर मैंने एक फिल्मी स्टोरी ‘मातृ मंदिर’ लिखी। इस कहानी को मैंने कम्पनी के जनरल मैनेजर सेठ गिरधारीलाल को जब सुनाया तो उन्होंने कहा कि



यह कहानी तुमने सेठजी के बारे में लिखी है क्या ? मैंने कहा कि यह कहानी उनके बारे में नहीं है। यह तो जीवन और समाज की कहानी है। यह कहानी बम्बई आने पर मैंने प्रकाश पिक्चर्स के डाइरेक्टर विजय भट्ट को सुनाई तो उन्होंने इसे पसंद करते हुए यह कहकर टाल दिया कि इसके लिए बहुत उच्च कोटि के चरित्र अभिनेताओं की आवश्यकता है। यह मनोवैज्ञानिक स्टोरी है। कहानी के बारे में उनकी इस प्रशंसा से मैं सन्तुष्ट हुआ मगर दूसरे किसी प्रोड्यूसर को पुनः यह सुनाने की हिम्मत नहीं हुई।

पंचोली आर्ट पिक्चर्स लाहौर में अब मेरे संघर्ष के दिन शुरू हो गये। पांच गीतों तक तो प्रेमी जी ने मुझे रौंकाया मगर इसके बाद ऐसी घटना घटी कि मेरे गीत पांच से छै नहीं होने पाये। नौबत यहां तक पहुंच गई कि ‘कैसे कहूँ’ फिल्म से मेरे ये पांचों गीत कटने जा रहे थे और इनके स्थान पर दूसरे गीतों के भरने की व्यवस्था होने लगी थी। मगर सेठ जी की उदारता के फलस्वरूप ये गीत कटने नहीं पाए। फिल्म को तो असफल होना ही था। दो चार सप्ताह यह फिल्म चली भी तो मेरे ही गीतों की बदौलत। ‘कैसे कहूँ’ फिल्म के गीतों और गीतकार पर ही नहीं पूरे पंचोलीआर्ट पिक्चर्स पर संकट के बादल धिरने लगे थे। इनमें से एक था जैमिनी की फिल्म ‘रतन’ और दूसरा संकट था भारतवर्ष का विभाजन, जो दो वर्ष बाद हुआ। किन्तु पाकिस्तान बनने के पहले ही ‘रतन’ फिल्म ने पंचोली आर्ट पिक्चर्स को इस कदर चाट लिया था कि वह जर्जर, खोखला तथा अस्थिपंजर मात्र रह गया था। पाकिस्तान बन जाने के कारण इस अस्थि पंजर से चिपके जीव लाहौर से पलायन करने को बाध्य हो गये थे। मैं दो वर्ष पहले ही लाहौर छोड़ चुका था। बम्बई के फिल्मी क्षेत्र में पंचोली के अधमरे जीवों को अपनी जीवन रक्षा का संघर्ष नए सिरे से करना पड़ गया था। संघर्ष ही जीवन है, यह सिद्धान्त ओमप्रकाश-हास्य अभिनेता, प्राण-खलनायक, जयन्त नायक, बी आर चोपड़ा -प्रोड्यूसर-डाइरेक्टर आदि पर शत प्रतिशत प्रमाणित हुआ। किन्तु इसके पहले मैं अपने ऊपर आए ‘रतन’ का संकट का उल्लेख प्रसंगानुसार आवश्यक समझता हूँ।

‘रतन’ कारदार स्टूडियो बम्बई में जैमिनी दीवान-प्रोड्यूसर, मधोक-गीतकार और नौशाद अली खाँ का एक मिशनरी प्रयत्न था। जैमिनी दीवान ने अपने भाई करण दीवान को इस फिल्म का नायक बना रखा था और स्वर्णलता को नायिका। दुखान्त (प्रेम काण्ड) का इसका कथानक था। इसके गीत दर्द भरी मिठास लिए हुए थे जो दिल से ऐसे चिपक जाते थे कि बिना इसको बाहर निकाले ये भीतर से बाहर नहीं आते थे। ‘अंखिया मिला के जिया भरमा के चले नहीं जाना’, ‘जब तुम ही चले परदेश लगाकर ठेस ओ प्रीतम प्यारा दुनिया में कौन हमारा’, ‘सावन के बादलों उनसे ये जा कहो’, रोमाण्टिक पुकार ‘आ आ आ.. ..’ आदि सुनकर श्रोता समूह के सीने पर एक साथ



असंख्य सांप लोट जाते थे। जिस समय यह पिफल्म लाहौर में चली उस समय रस-सिन्धु में पूरा पंजाब ही तबाह हो उठा था। सबकी जिहवा पर रतन के गीत थे। इसके गीतकार और संगीतकारका यश आसमान छूने लग गया था। मधोक साहब पंजाबी थे। वे लाहौर में रतन के प्रदर्शन के समय आये भी थे। पंचोली आर्ट पिक्चर्स में उनकी सेठ दलसुख एम पंचोली से बात हुई। 'कैसे कहूँ' फिल्म का भी जिक्र आया। सेठ जी ने अपने इस रोगी औलाद का मधोक साहब से निदान करवाया। मधोक साहब ने उन्हें पूर्ण आश्वस्त किया, मैं यह रोग चुटकी बजाते ठीक कर दूंगा। उन्होंने मेरेलिखे सभी गीतों को फिजूल और बकवास बतलाया। इन गीतों को फिल्म से निकाल देने की नेक सलाहदी। सेठ जी ने कुछ सोचकर मधोक साहब से अर्ज किया कि आप अपने कुछ गीत इसमें टानिक केरूप में दे दें कि इस फिल्म में जान पड़ जाये। जो काम हो चुका है उसको उलटने में परीशानी है। इस तरह मधोक साहब ने अपने चार-पांच गीत फिल्म 'कैसे कहूँ' में जोड़ दिए। पंचोली आर्ट पिक्चर्स में मधोक साहब नियमित आने लगे। वे किसी समय किसी दिन दो-एक घण्टे के लिए कार से आते। कुछ देर रिटायरिंग रूम में ड्रिंक आदि का लुत्फ लेते। उसके बाद मूड आने पर चमचों के साथ और हारमोनियम तबला वालों को लेकर बैठ जाते थे। दियासलाई अपने हाथ में ले लेते थे और मूड आने पर उसे ठोक-ठोक कर उसमें से रिद्म पैदा करते थे। एक गीत का मुखड़ा तैयार हो जाने पर स्टूडियो भर में यह महत्वपूर्ण खबर व्याप्त हो जाती थी कि मधोक साहब ने मुखड़ा तैयार कर लिया है। सेठ जी जब यह खबर सुनते कि आज मुखड़ा तैयार हो गया गीत का तो उस दिन खुशी में मधोक साहब के साथ दूना ड्रिंक करते। मैंने भी एक दिन मधोक साहब की जमात में अनचिन्हुआसा बैठ कर यह लीला देखी। हारमोनियम तबला अपनी मधुर संगति में सुर ताल दे रहा था। दियासलाई की डिविया ताल का निर्देश कर रही थी। सर झूम झूम जाता था तब तक मुंह से बोल फूट पड़े-सिपहिया बाबू, सिपहिया बाबू ! ! सिपहिया बाबू, बोल फूटते ही सारी जमात गरम हो उठती थी। साजिन्दों में भी सरगरमी बढ़ जाती थी। उनकी उंगलियों में गतिशीलता विद्युत की शक्ति पाजाती थी। तब तक फिर मुंह से बोल फूट पड़ता था- आ जा ! ओ आ जा !! सिपहिया बाबू आ जा, मोरा जी घबराये। एक डेढ़ घण्टा की इस कड़ी मेहनत के बाद चाय, टोस्ट, पान, सिगरेट का दौर चलता। अब यह काम कल पूरा होगा। इस निश्चय के साथ जमात उठ पड़ती। मधोक साहब सीधे सेठ जी के कमरे की तरफ जाते। स्टूडियो में यह गरम खबर पफैल जाती कि वाह, क्या शानदार मुखड़ा आज मधोक साहब ने तैयार किया है कि उसके बोल सबकी जबान पर अपने आप ही आ जाते हैं- सिपहिया बाबू, आ जा, मोरा जी घबराये। स्टूडियो के बातावरण में इस बात की खुलेआम चर्चा होती थी कि एक फिल्म के पूरे गीत लेखन का मधोक साहब चौबीस हजार रुपया



करते हैं। आमतौर पर एक पिफल्म में आठ गीत होते हैं। इस प्रकार एक गीत का तीनहजार खपया मधोक साहब को पड़ता था। भाई के आगमन की प्रतीक्षा में बहिन उद्धिग्न है। इसी अवसर के लिए मधोक साहब ने उपर्युक्त गीत लिखा था जिसकी बड़ी शोहरत स्टूडियो में थी। मैं हठात एक दिन स्टूडियो के जनरल मैनेजर गिरधारी लाल के आफिस में जा पहुंचा। मैनेजर साहब की दिलचस्पी मुझमें ज्यादा थी। वे सिपहिया बाबू गीत से सन्तुष्ट नहीं थे। इस अवसर के उपयुक्त मैंने भी एक गीत लिखा था जिसको मैंने मैनेजर साहब को सुनाया। वे यह गीत सुनकर कुछ खुश दीख पड़े। उन्होंने राय दी कि यह गीत सेठ जी को भी सुना दीजिए। उसकी आरम्भ की पंक्तियां इस प्रकार थीं-

‘आओ तुम्हें बहिन पुकारती मेरे भाई
कबसे तुम्हारे वास्ते यह थाल सजाई।’

इसे सुनने से कुछ होना जाना नहीं था। सेठ जी मेरी ओर से बदल चुके थे। मैं भी मन ही मन यह अन्दाजा लगा रहा था कि पंचोली आर्ट पिक्चर्स में मेरे गिनती के दिन बीत रहे हैं। मगर मेरी आन्तरिक मस्ती पूर्ववत थी। एक लतीफा मैंने लिखा और मित्रों की अन्तरंग गोष्ठी में सुनाया भी

पंचोली में नयी पुकार
एक गीत के तीन हजार
डण्ड लगाते हैं दो चार
एक गीत के----।

इस प्रकार पंचोली आर्ट पिक्चर्स में अब मधोक साहब की तूती बोल रही थी। स्टूडियो में मेरे प्रति सबके मन में करुणा और दया का भाव था। सेठ रविन्द्र दवे जी पंचोली साहब के सगे सम्बन्धी थे जिन्होंने ‘पूंजी’ फिल्म का निर्देशन किया था तथा जो काशी, सरदार एस रणजीत के साथ, नये नये कलाकारों की खोज में गये थे। इस समय एक नयी पिक्चर ‘धमकी’ बनाने जा रहे थे जिसकी स्टोरी, डायलाग, गाने और स्क्रीन प्ले सब कुछ मधोक साहब प्रस्तुत करने वाले थे। और भी दो तीन फिल्में पंचोली में ही मधोक साहब ने लिखी थी। मधोक साहब पूरे तौर पर लाहौर के फिल्मी वातावरण पर छा गये थे। ‘रतन’ फिल्म के गीतों की शोहरत उनमें हर घड़ी नयी नशीली लहर पैदा कर जायाकरती थी। मैं एक दिन अपनी सन्ध्या और रात अपने मित्र श्री विद्यारत्न के घर पर बिता रहा था। रात के दस बजने वाले थे। शाम का पहला शो समाप्त हो गया था। इण्टरवल में ‘रतन’ के रिकार्ड बज रहे थे। सिनेमा हाउस विद्यारत्न जी के निवास स्थान के पास ही था। आवाज छनकर कान में स्वरमाधुरी धोल रही थी। सावन के बादलों वाला गीत था। विद्यारत्न जी की धर्मपत्नी के मुँह से निकला-कितना अच्छा होता अगर मोती जी के गीत ‘कैसे कहूँ’ के इसी प्रकार गूंजते। उनकी वह





आकांक्षा तो पूर्ण होने से रही उस समय। ऐसी स्थिति लाने के लिए मुझे घोर तपस्या करनी पड़ेगी, यह मैं जानता था और जब भाग्य साथ देगा तो परम पिता प्रभु का वरदान भी मिलेगा। मिल्टन की यह पंक्ति ऐसी ही मनोदशा पर विशेष रूप से सत्य घटित होती है- ‘दे आलसो सर्वबेटर लाई एण्ड वेट’। आगे चलकर जब हमारे गीत का रेकार्ड ‘हमको तुम्हारा ही आसरा, तुम हमारे हो न हो’, पूरे भारतवर्ष में ही नहीं विदेशों में भी गूंज उठा तो मुझे वह रात और विद्यारत्न की धर्मपत्नी की वह बात विशेष रूप से याद आई। यदि वह जोड़ा भारत में कहीं होगा तो मेरे इस गीत को अवश्य सुन रहा होगा और उनके दिल की सारी कशिश जखर मिट गई होगी।

इन परिस्थितियों से ऊब कर मैंने स्टूडियो से एक महीने का अवकाश लिया और बम्बई के रास्ते घर की ओर खाना हुआ लाहौर से। बम्बई की मेरी यह यात्रा बड़ी सुखद रही। मेरे अभिन्न भगवान प्रसाद त्रिपाठी इस यात्रा में मेरे साथ थे। जौनपुर के अखिलेश चन्द्र उपाध्याय ने लाहौर की अपनी एक यात्रा में मुझे जौनपुर के ठाकुर ध्रुवराज सिंह का पता बताया था कि यदि बम्बई कभी जाना हो तो कीर्तिकर बाड़ी, दादर पश्चिमी, में ठाकुर ध्रुवराज सिंह के यहां आपको अच्छा आश्रय और पूर्ण सहयोग मिलेगा। किन्तु उनके यहां पहुँचने के पूर्व ट्रेन में ही एक हमदर्द मिल गये जिन्होंने विक्टोरिया टर्मिनस के पास ही बाम्बे पफोर्ट में बूटावाला बिल्डिंग के चौथी या पांचवीं मंजिल पर एक कमरा रुकने के लिए दिलवा दिया। उन्होंने सनराइज पिक्चर्स के जेनरल मैनेजर जवाहर लाल शर्मा को फोन किया जो तत्काल कार लेकर विश्वमित्र भवन पहुँचे। विश्वमित्र समाचार पत्र में यह खबर तत्काल छपने को दे दी गयी कि ‘पंचोली आर्ट पिक्चर के गीतकार श्री मोती बी ए बम्बई में’। लाहौर की सारी पीड़ा बम्बई में गीत बन कर फिर चहकने लगी। एक बार फिर नये सिरे से मैंनेएक विराट फिल्म संसार में प्रवेश किया जहां अनेक दलसुख एम पंचोली सफलता की सीढ़ियों पर चढ़ने के लिए क्यू में खड़े थे। जवाहर लाल शर्मा वही थे जिनसे लाहौर में अनन्त मराल और करुण के यहां मेरा परिचय हुआ था। शर्मा जी मेरे गीतों के अनन्य भक्त थे। ठाकुर राममनोहर सिंह का टेलीफोन प्राप्त करते ही शर्मा जी कार लेकर स्वयं विश्वमित्र भवन पहुँच गये थे। ठाकुर साहब से विदा होकर हम शर्मा जी के निवास स्थान ग्रैण्ट रोड पहुँचे, इम्पीरियलसिनेमा हाउस के सामने जहां सनराइज पिक्चर्स का साइन बोर्ड टंगा था। शर्मा जी को अभी रहने के लिए मकान नहीं मिला था। सन राइज पिक्चर्स के आफिस में ही वे रहते थे। वहीं हम भी उनके साथ रहने लग गए। यहीं भारत के सर्वश्रेष्ठनिर्माता निर्देशक, राजकमल कला मन्दिर के अधिष्ठाता, वी शान्ताराम से मिलने की योजना बनी। राजकमल कला मन्दिर पहुँच गये। वी शान्ताराम से मिलने के पूर्व उनके भाई काशीनाथ की स्वीकृति आवश्यक थी। औरों के लिए जैसी हो, मेरे लिए तो यह व्यवस्था ऐसी ही रही। वी काशीनाथ ने



हम लोगों का आशय जानकर कहा-शान्ताराम के सामने बड़ीबड़ी समस्यायें हैं। फिल्म जगत में आये दिन नयी नयी चुनौतियां खड़ी हो जाती हैं। शान्ताराम को इनका मुकाबला करना पड़ता है। इस समय वे इतने व्यस्त हैं कि उनसे मिलना सम्भव नहीं है। रही काम की बात, आप गीत लिखने का चान्स चाहते हैं तो आप मास्टर विनायक राव से मिलिए। वे प्रफुल्ल पिक्चर्स के मालिक हैं। इस समय वे एक बड़ी कास्ट्रयूम पिक्चर, स्टार कास्ट, लेकर प्रोड्यूस करने जा रहे हैं। मैं उनको पत्र लिख देता हूँ। उनसे आप मिलें। यदि कोई गीत इसमें आपका पसन्द आ गया उनको तो आगे चलकर इसी के आधार पर आप शान्ताराम से मिल सकते हैं। हम लोगों को उनकी बात बहुतअच्छी लगी और उनका पत्र मास्टर विनायक राव के नाम लेकर अपने स्थान पर आ गये। शर्मा जी ने मास्टर विनायक राव से मिलने का समय निश्चित कर लिया। टेलीफोन द्वारा मास्टर विनायक रावभी इम्पीरियल सिनेमा हाउस के पास ही 'कुमुद विला' नामक एक बिल्डिंग में रहते थे। 'कुमुद विला' सनराइज पिक्चर्स के मालिक बीएम व्यास का मकान था जिसमें मास्टरविनायक राव किराये पर रहते थे। मास्टर विनायक राव कोल्हापुर के निवासी थे। वे किसी उच्च विद्यालय में अंग्रेजी के प्रवक्ता थे मगर कला के प्रति अनन्य प्रेम के कारण अभिनेता के रूप में वे पहले फिल्मी कलाकार हो गये। 'ब्राण्डी की बोतल' में उनका सराहनीय अभिनय था। वे अब प्रोड्यूसर थे।

'ब्राण्डी की बोतल' फिल्म में मास्टर विनायक राव ने हास्य अभिनेता की भूमिका प्रस्तुत की थी जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा सबने की थी। किन्तु जब मैंने उनको उनके निवास स्थान पर देखा तो उनमें हास्य अभिनेता होने के कोई भी लक्षण नहीं पाया। श्याम वर्ण, दोहरा बदन, गोल चेहरा, गले में स्वर्ण की मोटी चेन, बनियाइन पहने और लुंगी लपेटे, चमकती आंखें और भव्यता की प्रतिमूर्ति। साक्षात विनायक राव ने भारतीय ढंग से अपने आसन से उठकर हमारा और शर्मा जी का अभिवादन किया। शील-संकोच के वशीभूतमैं उनकी गद्दी पर उनसे कुछ दूर सिकुड़ा-सिमटाबैठ गया। शर्मा जी लम्बे कद के थे। वे कुछ सांवले रंग के थे। उनका चेहरा गोल था। नासिका कुछ विशेष उन्नत थी। वे गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे मगर प्रगतिशील विचारों के पोषक थे। किसी का दब्बा स्वभाव उनको अच्छा नहीं लगता था। मेरा यहां का दब्बूपन उनको जंचा नहीं। बाद में इस प्रश्न को लेकर हममें गहरी बहस हुई। मेरे इस स्वभाव ने मेरा उपकार किया या अपकार यह आज तक मेरी समझ में नहीं आया। उपयुक्त अवसर प्रस्तुत होने पर दब्बा प्रकृति वाला मैं विकराल बन जाया करता हूँ। तब लोग मेरी इस विकरालता की निन्दा करने लगते हैं। मेरा ऐसा विचार है कि दीक्षा पूरी हो जाने के बाद भी प्रकृतिजन्य दीक्षा ही सर्वोपरि काम करती है और प्रकृति प्रदत्त इस दीक्षा को कोई बदल नहीं सकता। मास्टरविनायक राव की नयी फिल्म की, जिसका निर्माण होने जा



रहा था, बात चली। मास्टर विनायक राव ने मुझसे अपनी कोई कविता सुनाने का आग्रह किया। मैंने उनको अपनी वही कविता सुनाई-‘रूप भार से लदी तूं चली।’ इस कविता का प्रभाव विनायक राव पर बहुत गहरा पड़ा। इस कविता की उन्होंने बड़ी प्रशंसा की और अपनी निर्माणाधीन पिक्चर का पूरा संवाद और गीत लेखन का काम उन्होंने मुझे देना चाहा। मैंने विवशता प्रकट की, केवल गीत लिखने का उत्तरदायित्व ही स्वीकार किया। इस फिल्म का नाम था ‘सुभद्रा’ जिसमें शान्ता आप्टे नायिका थीं। मास्टर बसन्त देसाई इसके संगीत निर्देशक थे। पं सुदर्शन इसके संवाद और गीत लिख रहे थे। किन्तु विनायक राव उनके संवाद और गीत से सन्तुष्ट नहीं थे। दो तीन गीतों की परिस्थितियां उन्होंने मुझे बतलाई जिन्हें मैंने नोट कर लिया। दो दिन का समय उनसे मांगा।

दो दिनों में तीनों गीत मैंने लिख लिए। शर्मा जी और भगवान प्रसाद त्रिपाठी को सुनाकर उनकी स्वीकृति मैंने प्राप्त की। मास्टर विनायक राव को ये तीनों ही गीत बहुत पसन्द आए। उन्होंने दो गीत और लिखने के लिए मुझसे कहा। ये गीत भी लिख लिए गए और मास्टर विनायक राव को ये गीत भी बहुत अच्छे लगे। उनकी स्थायी पंक्तियां इस प्रकार थीं-

1. गोकुल के कृष्ण कैसे इतने बदल गये ।
2. मेरे मन जा उन्हें संदेश सुना।
3. मैं खिली खिली फुलवारी।
4. मेरे नयनों में जल भर आए, वे नहीं आए।
5. चारों ओर अन्धेरा।

ग्रैण्ड रोड के दक्षिण बाजू पर सनराइज पिक्चर्स के आफिस में शर्मा जी के साथ मैं रहता था और उसके उत्तर के बाजू पर स्थित ‘कुमुद विला’ में मास्टर विनायक राव अपने समस्त कुनबे के साथ रहते थे। दो मिनट में मैं उनके निवास स्थान पर पहुंच जाता था। मैं अपने सभी गीतों को संगीतकी धुन में नहीं, एक खास तरन्नुमी अन्दाज में पेश करता था जो एक नए ढंग का असर डालता था जिससे सुनने वाले खुश हो जाया करते थे। मास्टर विनायक राव पर भी मेरे गीतों का जादू चल गया। उसमें एक खसूसियत यह थी कि आत्मविश्वास और आत्मनिर्णय का उनमें अभाव नहीं था। अपनी क्षमता के प्रति वे सजग और सतत सचेष्ट रहते थे। इसीलिए उनके ऊपर उनके चमचे हावी नहीं हो पाते थे। उनके अधीनस्थ कर्मचारी उन पर जान देते थे और उनके आदेशों का पालन बड़ी लगन से करते थे। इसीलिए मेरे गीत भी उनके यहां कभी खटाई में नहीं पड़े। ‘सुभद्रा’ अर्जुन की प्रतीक्षा में कबसे व्याकुल है। किन्तु अर्जुन उसके पास पहुंच नहीं पा रहे हैं। इस अवसर के लिए जो गीत मुझसे मास्टर विनायक राव ने लिखवाया था उसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार थीं-



मेरे नयनों में जल भर आये
 वे नहीं आए।
 मन की कलियों से माला बनाई
 जिनमें अपनी हँसी थी बसाई
 हाय हाथों में फूल कुम्हलाये
 वे नहीं आए।
 मेरे नयनों में—

मेरे गाने का अन्दाज निराला था। ‘वे नहीं आए’ एक बारकहकर दूसरी बार केवल सितार की झंकार से ही इसे व्यक्त करने पर यह गीत और भी मधुर हो उठता था। सम्भवतः इसी से प्रसन्न होकर मास्टर विनायक राव ने अपनी एक पालित कन्या को बुलवाया जो संगीत की शिक्षा ग्रहण कर रही थी। उस समय उसकी आवाज में विलक्षण माधुर्य था। एक दिव्य अनोखापन था। वह लड़की पन्द्रह वर्ष की रही होगी। फ़ाक, चड़ढ़ी और चुन्नी में औसत कद की दुबली पतली सांवली सी एक सलोनी बालिका उनके बुलाने पर आई। विनायक राव जी ने उससे मेरा वह गीत अपने स्वर में सुनाने को कहा। उस बालिका ने वहां पर रखा हुआ हारमोनियम अपने सामने रख लिया और उसके परदों पर अपनी अंगुलियां फेरने लगी। विनायक राव जी ने मुझसे वह गीत अपने तर्ज में प्रस्तुत करने को कहा। मैंने तत्काल इस आदेश का पालन किया। उस लड़की ने बड़े गौर से मेरा गीत सुना। दो एक बार परदे पर उसने अपनी उंगलियों को इधर उधर धुमाया और हारमोनियम को खिसकाकर एकओर करके वह खिलखिलाकर हँसती हुई वहां से चली गई। हम दोनों भौचक्के से उसे देखते रह गए। अभी बच्ची है। मारे लाज के वह चली गई होगी। थोड़ी देर बाद मैं वहां से चला आया। नीचे जीने के कमरे में जो ड्राइंगरूम जैसा था मैंने देखा कि एक किनारे रखे रेडियो से पिफल्म ‘पहले आप’ का एक गीत मधोक का लिखा, नौशाद का धुन तैयार किया हुआ प्रसारित हो रहा था। गीत था- ‘आजा कहीं दूर चलें। दुनिया की आंखों से हाय रे हाय, छिप छिप प्यार करें।’ इस गीत की धुन वाकईबहुत ही प्यारी थी और आम फहम इसके बोल भले ही साहित्यिक न हों मगर कम चुटीले नहीं थे। इस गीत को मैं भी पसन्द करता था। कमरे में देखा कि वह लड़की इस गीत पर ताली पीट कर झूमझूम कर मगन मस्ती में नाच रही थी। जैसे ही मैं कमरे में दाखिल हुआ वह पुनः खिलखिलाकर हँस पड़ी और नाखून होठ से लगाकर चुप हो गयी। मैं कुछ प्यार से, उपालम्भ के स्वर में यह कहता हुआ बाहर आ गया कि ऊपर तो तुम लजा कर भाग गई थी। कहने पर भी वह गीत नहीं तुमने सुनाया और यहां गा भी रही हो, नाच भी रही हो। वह लड़की वहां से भी खिलखिलाकर



हंसती हुई दूसरी तरफ निकल गई।

यह लड़की और कोई नहीं, यह कीट्रस की नाइटिंगेल और शेली की स्कार्फलार्क, भारत की आत्मा की आवाज का मूर्तिमान स्वरूप लता मंगेशकर थी। उस समय सिवा विनायक राव के इसे कोई नहीं जानता था। उसकी बहनें आशा और उषा बहुत नन्हीं सी थीं। मगर लता ने अपने साथ-साथ आशा भोंसले और ऊषा मंगेशकर को भी अमर कर दिया। अमरत्व का यह स्थान प्राप्त करने में लता को कितनी ठोकरें खानी पड़ीं और कितना संघर्ष करना पड़ा यह सब था इन अंखियनागे। फिल्म सुभद्रा के लिए मेरे पांच गीत स्वीकार कर लिए गये जिनमें दो गीतों को मास्टर विनायक राव ने विचाराधीन कर दिया था। इनके सम्बन्ध में अपना अन्तिम निर्णय अपने कहानी लेखक मराठी के उपन्यासकार, क्रौंच वध के रचनाकार श्री वी एस खांडेकर से बिना पूछे बेनहीं कर सकते थे। अतएव मुझे अपने साथ लेकर वे श्री खांडेकर के गांव कोल्हापुर गये। वहां श्री खांडेकर से मेरी भेट हुई। उन्होंने उन दोनों गीतों वाले स्थल को पहले ही कथानक से निकाल दिया था। इसलिए चाहते हुए भी मास्टर विनायक राव उन गीतों को अपने पिक्चर में नहीं ले सके। कोल्हापुर में मैं लता मंगेशकर के घर भी गया। वह आज भी मेरी आंखों में झलक झलक जाता है। कोल्हापुर से हम लोग पुनः वापस बम्बई आ गए।

बम्बई में रहते हुए मेरी छुट्टी आधी बीत चुकी थी। अब मैं बम्बई छोड़कर घर जाने को बेताब हो गया। ‘सुभद्रा’ फिल्म के सभी गीतों को लिखने का प्रलोभन भी बम्बई में रोक नहीं पाता था। मैं अपने गीतों का पेमेन्ट मास्टर विनायक राव से तलब करने लगा। मास्टर विनायक राव ने मुझे घर जाने की इजाजत दे दी मगर पैसों के प्रश्न पर दो दिन और लगे। मैं प्रत्येक गीत का उसी जमाने में पांच सौ रूपया चाहता था। मास्टर विनायक राव तीन सौ रूपया प्रति गीत दे रहे थे। शर्मा जी ने इस मामले में मध्यस्थता की। उन्होंने एक पत्र मास्टर विनायक राव के पास इसके लिए लिखा जिसका उत्तर उन्होंने उस लिफाफे की पीठ पर ही लिख दिया था। मास्टर विनायकराव के इस उत्तर से हम संतुष्ट हुए। भगवान प्रसाद त्रिपाठी और हम अब बम्बई छोड़ने को व्यग्र हो गये। पन्द्रह दिनों के भीतर बम्बई में हम लोगों ने काफी कुछ देख सुन और समझबूझ लिया था। शर्मा जी और मास्टर विनायक राव से विदा होकर हम दोनों दादर, पश्चिमी कीर्तिवाड़ी, में ठाकुर ध्रुवदेव सिंह के पास आ गये। मास्टर विनायक राव ने तत्काल पैसा नहीं दिया। उन्होंने मेरे गांव के पते पर उस पैसे को भेज देने का वचन दिया।

हम लोगों का सामान अभी तक उसी बूटा वाला बिल्डिंग में पड़ा हुआ था। त्रिपाठी जी जाकर सारा सामान वहां से दादर उठा लाए। यहां ठाकुर साहब लोगों से जब परिचय



हुआ तो धर्म, सौजन्य का, अपनापन का वह सागर उमड़ पड़ा जिसमें से निकल कर घर जाना बिल्कुल ही हम लोग भूल गये। तालुकेदार सिंह, रामबहाल सिंह, राज महातम सिंह मारकण्डेय प्रसाद सिंह, वृद्ध चाचा जी आदि पूरा परिवार विह्वल हो उठा। तीन चार दिनों तक औ उन लोगों के प्रेम पाश में आबद्ध रहना पड़ा। अब महालक्ष्मी और बम्बा देवी को प्रणाम कर हम लोग विकटोरिया टरमिनस पर इलाहाबाद वाली ट्रेन में सवार होकर इलाहाबाद पहुंच गये जहां हमारे बड़े भाई साहब सरकार की वेजीटेबुल स्कीम में इन्स्पेक्टर के पद पर कार्यरत थे।

भाई साहब, भाभी, दो भतीजे-सतीश और हरीश से मिलकर उत्सव मनाने का आनन्दप्राप्त हुआ। दो-तीन दिन मैं यहां रह गया। सबके लिए मैं बम्बई से कपड़े लेता आया था। भाई साहब के परिवितों से सुना कि पंचोली आर्ट पिक्चर्स के गीतकार मोती बीए पधारे हैं तो मुझसे मिलनेके लिए वे लोग आने लगे। यहां पर एक मजेदार बात यह हुई कि भाई साहब के परिवितों पर मेरा कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मेरे भाई साहब एक निरपेक्ष महात्मा के समान थे। वे कुछ खिन्न जखर हुए होंगे इस घटना से कि उनके मित्रों पर मेरी गुरुता का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यहीं से सम्भवतः उनके मन में मेरे फिल्मी परिवेश के प्रति उदासीनता की भावना उत्पन्न हुई जिससे आगे चलकर मुझको अपना चोला बदल देना पड़ा। मैं इलाहाबाद से चलकर अपने गांव बरेजी आ गया। मां-पिता, चाचा, चाची, पत्नी, पुत्र, अनुज, बहिन आदि से भेंट मुलाकात, गांव के कुटुम्ब के प्रियजनों के दर्शन हुये, सबका स्नेह मिला। कुछ दिन सुख से बीते। भैंस खरीदी, बैल खरीदा। एक बंगला बनवा रहा था, उसके निर्माण का काम कुछ आगे बढ़ा। साहु महाजनों का मामला भी अब नाम मात्र का रह गया था। घर की दशा सुधार की दिशा में तेजी से बढ़ने लगी थी।

और पुनः लाहौर की यात्रा हुई अपनी नौकरी पर, इलाहाबाद के रास्ते। भाई साहब और भाभी से आशीर्वाद प्राप्त करने के निमित्त यहां आने पर जैसे वज्रपात हो गया हो। भाई साहब और भाभी संगीन हालत में चारपाई पर पड़े थे। दोनों भयानक रूप से बीमार थे। उनके दोनों छोटे छोटे लड़के अनाथ और असहाय जैसे हो गये थे। इसी में ऊपर से अधिकारियों ने नाराज होकर भाई साहब का तबादला कर दिया था और नये इन्स्पेक्टर साहब चार्ज लेने के लिए आ पहुंचे थे। लाहौर की अपनी यात्रा स्थगित कर मैं उन परिस्थितियों का सामना करने में लग गया। विश्वविद्यालयमें मेरे छोटे भाई परमानन्द, मेडिकल कालेज में स्नातक थे। उनको वहीं से घर भेज दिया गया। यह काम शम्भुनाथ सिंह ने किया। दो तीन दिनों के भीतर मेरी माँ और मेरे चाचाजी इलाहाबाद पहुंच गये। एक सप्ताह तक विकट स्थिति को सम्हालने का प्रयत्न किया। नये इन्स्पेक्टर महोदय को मैंने भाई साहब की ओर से सब चार्ज दे दिया। सबको लाद फांद कर घर लाया गया। भादो का



महीना था। नदी-नाले बाढ़ की अवस्था में समुद्र बन गये थे। मैं बाहर ही बाहर गोरखपुर चला गया, उन लोगों को घर भेजकर, योग्य चिकित्सक डा रामचन्द्र शर्मा वैद्यराज को लिवा लाने के लिए। वैद्य जी ने मुझे देखकर यह समझा कि मैं ही बीमार हूँ क्योंकि एक सप्ताह में मैं बहुत दुर्बल हो गया था और रूप रंग भी बिगड़ गया था। यह सारी स्थिति एक सप्ताह में ठीक हो गयी। भाई साहब पथ्य खाने लगे। उन्होंने अपनी नौकरी से इस्तीफा दे दिया था। मैंने पन्द्रह दिन अपना अवकाश और बढ़ाए जाने का तार दे दिया था। यह सब काम समाप्त करके मैं पुनः लाहौर के फिल्मी मोरचे पर डंट गया।

भगवान प्रसाद त्रिपाठी अपने पारिवारिक झमेले के कारण इस बार लाहौर मेरे साथ नहीं आए। उन्होंने जबलपुर, नागपुर और वर्धा को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। लाहौर में विद्यारत्न और रणवीर बिहारी सेठ के साथ रहते हुए पंचोली आर्ट पिक्चर्स में मैं अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्षरत हुआ। सेठ दलसुख एम पंचोली मेरी ओर से उदासीन रहने लगे थे। मधोक साहब की चारों तरफ स्टूडियो भर में वाहवाही थी। काशी वाले पंडित जी का रोब दाब अब खत्मप्राय था। मेरे हितैषी और शुभचिन्तक मित्रगण जैसे सरदार एस रणजीत, आई एस वाली, खन्ना साहब, कृष्ण आदि की यही सलाह थी कि पंचोली आर्ट पिक्चर्स में रहते हुए तनख्वाह चाटने से अच्छा होगा कि बम्बई के विस्तृत फिल्म संसार को अपना कार्यक्षेत्र बनाऊँ। हरिकृष्ण प्रेमी से खुलकर कोई बात नहीं की। उनका मनमाने ढंग से स्टूडियो में आना जाना और फिल्मी जीवों से मिलना जुलना लगा रहता था। मैंने देखा कि वे प्रायः एस रणजीत सिंह के साथ किसी फिल्मी स्टोरी पर विशेष कार्य कर रहे थे। सम्भवतः वे स्वयं उसके प्रोड्यूसर और एस रणजीत सिंह को उसका डायरेक्टर बनाना चाहते थे। धीरे धीरे हम सभी अपने पूर्व परिचित साथियों से कटते जा रहे थे। मेरा भी मन अब पंचोली आर्ट पिक्चर्स में नहीं रमता था। ‘कैसे कहूँ’ के मेरे गीत अपने भाग्य का रोना रो रहे थे और मैं अपने भाग्य का रोना रो रहा था। सेठ जी की ओर से मुझसे जवाब तलब किया गया कि मैंने स्वीकृत अवकाश से अधिक समय क्यों लिया ? पुनः मैंने बम्बई जाकर पंचोली आर्ट पिक्चर्स में सेवा कार्य करते हुए क्यों गीत फरोशी का धन्धा किया ? सेठ जी ने मुझे बुलवाया अपने ऑफिस में पूछ-ताछ करने के लिए। उनके सवाल के जवाब में मैंने अपने घर की स्थिति और भाई साहब की बीमारी का वृतान्त बतलाया और दूसरे आरोप का उत्तर इस प्रकार दिया कि जब ‘कैसे कहूँ’ में अब मेरे गीतों के बदले मधोक साहब गीत लिख रहे हैं और सभी पिक्चर्स वे ही लिखे, तो मैंने यह समझा कि आप मुझे इस योग्य अब नहीं समझते कि मैं गीत लिख सकता हूँ। अपनी इस क्षमता को आजमानेके लिए मैंने बम्बई के फिल्म क्षेत्र में प्रयोग के रूप में मास्टर विनायक राव से भेट की और





उनके पिक्चर 'सुभद्रा' के लिए तीन चार गीत लिखे हैं। उनके विचार मेरे सम्बन्ध में जो हैं वे आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं। यह कह कर मैंने पूर्व उल्लिखित उनका पत्र पढ़कर सेठ जी को सुना दिया। 'श्री मोती, प्रदीप और मधोक से हजार गुना बड़े हैं। मगर दुनिया अभी उनको जानने वाली है और वितरक उनके नाम पर अपनी थैलियों का मुंह खोलने वाले हैं। मैं किसी सच्चे कलाकार का अपमान नहीं कर सकता।' सेठ दलसुख एम पंचोली यह सब सुनकर चुप रह गये। इसके बारे में फिर कभी उन्होंने मुझसे कुछ कहा नहीं। मगर उनकी यह बेरुखी मुझे बहुत खली और मैंने भी मन ही मन लाहौर नगरी को प्रणाम कर लेने का निश्चय कर लिया।

इस समय पंचोली आर्ट पिक्चर्स में बड़ी चहल-पहल थी। एक बहुत बड़ी पिक्चर 'श्रीरी फरहाद' नाम से यहां बन रही थी जिस पर लाखों रूपये पानी की तरह बहाया जा रहा था। 'रागिनी' उसकी नायिका थी और 'जयन्त' उसका नायक था। प्रहलाद और हरवंश उसके निर्देशक थे और अपने कैमरा के स्पेशल इफेक्ट के विशेष ज्ञान से अनेक अद्भुत चित्र प्रस्तुत कर रहे थे। बाम्बे टाकीज की सुप्रसिद्ध लोकप्रिय फिल्म 'किस्मत' की नायिका मुमताज शान्ति के पति जनाबवली साहब के भाई नाजिम पानीपत उसमें गीत लेखक थे। मास्टर अमरनाथ उसमें भी संगीत रचना दे रहे थे। एक शर्मा नामी पंजाबी लेखक था जो सेठ जी का मित्र था, उसमें गीत दे रहा था नाजिम पानीपत के साथ। नृत्य के लिए उसके एक गीत के बोलों पर हैरानी होती थी कि 'गोरी गागर की गंगाउधार दिए जा।' ये लोग गंगा की पवित्रता को भी किस नृशंसता के साथ खराब कर रहे हैं यह वेदना मुझे अब तक सालती रहती है।

इसी 'श्रीरी फरहाद' के मुकाबले एस नजीर बम्बई में 'लैला मजनू' प्रोड्यूस कर रहे थे जिसमें खुद नजीर नायक थे और स्वर्णलता नायिका थी। साधारण खर्च में यह गरीब पिक्चर को बना रहा था। मेरे लाहौर छोड़ते छोड़ते दोनों फिल्में दुनिया के बाजार में उतरीं। पंचोली की पिक्चर 'श्रीरी फरहाद' को बम्बई के एवरग्रीन पिक्चर्स ने पन्द्रह लाख में खरीदा। पंचोली साहब के लिए तो यह डीलिंग बड़े लाभ की रही मगर एवरग्रीन वाले इसे लेकर मातम मनानेको मजबूर हुए। श्रीरी फरहाद बुरी तरह पिट गई। 'लैला मजनू' इतनी चली कि वह आसमान छूने लगी। नजीर ने इसी के चलते बम्बई में अपना एक अलग स्टूडियो खड़ा कर लिया। श्रीरी फरहाद के पिट जाने से पंचोली साहब को पैसे भले मिल गये हों मगर उनकी साख पर बड़ा गहरा असर पड़ा। 'कैसे कहूँ' तो असफल हुई ही, उसके बाद जितने भी फिल्म पंचोली साहब ने प्रोड्यूस किए सभी क्रम से पिटते चले गये। आखिर वह भी समय आ गया कि राजनीतिक कारणों से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विभाजन के सिलसिले में अपना अपना बोरिया बिस्तर बांधकर इन सभी कलाकारों को बम्बई



भागना पड़ा। परम पिता की यह बड़ी दया थी मुझ गरीब पर। उसने पहले ही इस स्थिति से सचेत कर दिया और इस घटना के दो वर्ष पूर्व ही मैं लाहौर छोड़कर बम्बई के लिए रवाना हो गया। चलने के पूर्व एक बार पुनः मेकलोड रोड पर उसी मानसरोवर होटल के सामने मैं खड़ा होकर अपने डेढ़ वर्ष के दिनों को याद कर रहा था। तब तक मैंने शादीलाल साहब के उर्दू रिसाले के आफिस के सामने बी आर चोपड़ा को खड़ा देखा। मैं उनके पास चला गया। उन्होंने मेरा हालचाल पूछा तो अपनी सारी परिस्थिति मैंने उन्हें बतला दी। उन्होंने मुझे बम्बई चले जाने की सलाह दी। इतना ही नहीं, उन्होंने बड़े प्रेम से बम्बई में अपने एक मित्र 'प्रकाश' के नाम एक पत्र लिख दिया कि वे मेरी सहायता करें। मेरी बहुत तारीफ चोपड़ा साहब ने उस पत्र में लिखी थी। प्रकाश जी अंग्रेजी की एक मशहूर फिल्मी पत्रिका 'शो' के सम्पादक थे। वैसे भी मैंने अपनी बम्बई यात्रा की भूमिका लाहौर में रहते समय ही तैयार कर ली थी। भेटवार्ता के लिए मेरे पास बाम्बे टाकीज, फिल्मस्तान लिमिटेड और प्रकाश पिक्चर्स से पत्र भी आ चुके थे। सबने लिखा था कि जब आप बम्बई आयें तो अवश्य मिलें। प्रयोग के रूप में मैंने बम्बई की यात्रा करके मास्टर विनायक राव के यहां अपनी स्थिति बना ही ली थी। ग्राण्ट रोड पर शर्मा जी का निवास स्थान और कीर्तिकर बाड़ी दादर पश्चिम में ठाकुर ध्रुवराज सिंह का घर मेरे लिए सुरक्षित था। दिसम्बर सन् 1945 में मैंने पंचोली आर्ट पिक्चर्स के गीतकार पद से त्यागपत्र दे दिया। किसी ने मुझे रोका नहीं। एक मेरा मित्र कृष्ण था जिसकी आंख के आंसू मेरे इस प्रकार विदा होने पर धरती पर गिरे और माटी में मिल गये।

लाहौर का स्टेशन। सन्ध्या का समय। सेकेण्ड क्लास के डब्बेमें अपने लिए आरक्षित ऊपरी बर्थ पर मैं जा बैठा। दो दिन और दो रात का यह सफर था। मैं सेकेण्ड क्लास का यात्री था। डिब्बे में कुल चार व्यक्ति थे। मेरी बर्थ के नीचे एक सम्भान्त सज्जन थे जो देखने में बहुत खूबसूरत थे। उनका मुख-मण्डल भव्य था। उनका पहनावा सादा किन्तु नए ढंगका था। अपने लिबास सेवे चिन्तक तथा रचनाकार प्रतीत होते थे। उनके बाल काले, धुंधराले थे, रंग गोरा, कद औसत और बदन दुहरा था। स्वस्थ और प्रसन्नचित्त थे वे। दो अन्य व्यक्ति अधेड़ थे। रोजगारी प्रतीत होते थे। उनका एक ही काम था। दोनों एक साथ बैठकर चुपचाप शराब पीते रहते थे। शराब पीकर नशे में धुत होकर सो रहे थे और फिर एकत्रा होकर शराब पीने लग जाते थे।

रात का वक्त बीत गया। सुबह भी धीरे धीरे सयानी हो चली। नाश्ता केवल ट्रेन के बेयरे, चाय और टोस्ट की ट्रे लेकर धूमने लगे। मैंने अपने लिए एक ट्रे ऊपर की बर्थ से झुककर मांगी। बेयरा जब मुझे वह ट्रे दे रहा था तो लपककर मेरे नीचे के बर्थ के सज्जन ने वह ट्रे अपने हाथ में ले ली। उन्होंने अपनी सीट से उठकर उसे मेरी ओर बढ़ा दिया। उनके इस आचरण



का मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा। मैं सोचने लगा यह दिव्य व्यक्ति कौन है ?

बेयरा आया। मैं अपनी ट्रे ऊपर से ही उसे देने लगा मगर उस व्यक्ति ने पुनः सेवा करनी चाही। इस बार मैंने हठपूर्वक यह कार्य उन्हें नहीं करने दिया और अत्यन्त व्यग्रता से उनका परिचय पूछ दिया। उन्होंने बड़े सरल ढंग से कहा कि लोग मुझे मुल्कराज आनन्द कहते हैं। यह नाम सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। कुछ कहते नहीं बना। केवल इतना ही कह सका कि क्या 'दि भिलेज' के लेखक, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के अंग्रेजी साहित्य के विद्वान डाक्टर मुल्कराज आनन्द आप ही हैं? उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। मैं अपने भाग्य की सराहनाकरने लगा। डा मुल्कराज आनन्दने मेरा परिचय जानना चाहा। मैं ऊपर से उत्तर कर नीचे उनकी बर्थ पर आ गया। मेरा परिचय उन्होंने जाना। उन्होंने बम्बई में मेरी मदद करने का वचन दिया। अपना पता उन्होंने मेरी डायरी में अपने हाथ से लिखा। उन्होंने बम्बई में अपने रुकने का स्थान भी बताया। मुझे बम्बई में मिलने के लिए भी उन्होंने मुझसे कहा। मेरी दृष्टि उनके पास पड़ी एक पुस्तक पर पड़ी। मैंने उनसे पूछकर वह पुस्तक अपने हाथ में ले ली। पुस्तक का नाम था-'With No Regrets' (कोई शिकायत नहीं), इसकी लेखिका थीं श्रीमती कृष्णा सिंह। उनसे आज्ञा प्राप्त कर उस पुस्तक के साथ मैं अपने बर्थ पर चला आया। फिर तो उस पुस्तक के साथ ही मेरा तादात्म्य हो गया। नेहरू परिवार की देश के लिए की गयी कुरबानी का सजीव चित्र मेरे अभ्यंतर में आन्दोलित हो उठा।

मेरी यह यात्रा अब पूर्णता की सीमा पर आने लगी। पुस्तक मैंने डाक्टर साहब को लौटा दी। उनसे बातचीत का भी आनन्द लाभ प्राप्त किया। भारतवर्ष में किस प्रकार प्रतिभा का अनादर होता था, लाहौर युनिवर्सिटी में उनके प्रति किस प्रकार पक्षपातपूर्ण व्यवहार हुआ और वे किस मनोदशा में भारत छोड़कर विदेश जाने को विवश हुए, विदेश में जीविकोपार्जनका संघर्ष उनके समय किस रूप में प्रस्तुत हुआ और लेखनी ने किस तरह उनकी सहायता की, विदेशियों ने उनकी लेखनी का किस प्रकार सम्मान किया, विश्व में उनकी पुस्तकें किस प्रकार समादृत हुईं और उनको संसारने जो सम्मान दिया, भारतवर्ष में भी बाद में उनकी प्रतिभा को कैसे स्वीकार किया गया और किस रूप में उनका मूल्यांकन किया, सम्पूर्ण बातें विस्तार से उन्होंने बताई। हम बाम्बे सेन्ट्रल पहुंचे। बम्बई में मिलते रहने का वचन देकर हम दोनों अलग हुए।



दादर स्टेशन से सीधे मैं ध्रुवराज सिंह के आवास पर पहुंचा। घर के सभी सदस्य मुझको देखकर बहुत प्रसन्न हुये। बम्बई में मेरे स्थायी निवास का निश्चय जानकर इन्हें और भी खुशी हुई। ध्रुवराज सिंह के अतिरिक्त वहां उनके भाई-पट्टीदार भी साथ ही रहते थे। ठाकुर तालुकेदार सिंह एक स्कूल में अध्यापक थे। उनके परिवार में एक अधेड़ उम्र के चाचा भी रहते थे। राममहात्म सिंह और मारकण्डेय सिंह भी भाई भतीजे होते थे ठाकुर साहब के। पिछली बार की बम्बई यात्रा में इन सभी लोगों से मेरी हार्दिकता बढ़ गयी थी जो अभी तक सुरक्षित थी। ऐसा लगता था कि परदेस में मैं अपने गांव आया हूँ। परदेस में ऐसा कुछ सौभाग्य से ही मिलता है। सभी प्रकार की सुविधायें यहां उपलब्ध थीं। बम्बई में जमने के लिए मुझे एक मजबूत सुरक्षित स्थान मिल गया। सनराइज पिक्चर्स के प्रोडक्शन मैनेजर जवाहर लाल शर्मा का आवास भी मेरा ही घर था। मैं खाने पीने रहने की चिन्ता से यहां मुक्त था। बम्बई कार्यक्रम योजनाबद्ध था। हाथ में धनुष और तरकश में तीर, यही मेरा बाना था। इसकी भूमिका मैंने लाहौर में रहते हुए ही तैयार कर ली थी। प्रकाश पिक्चर्स अन्धेरी, फिल्मस्तान लिमिटेड गोरेगांव, बाम्बे टाकीज मलाड के मालिकों से लिखा पढ़ी करके उनसे मिलने का समय सुनिश्चित करा लिया था। वी आर चोपड़ा ने अपना व्यक्तिगत संस्तुति पत्र अपने मित्र प्रकाश को, जो 'शो' के सम्पादक थे, मुझे दिया था। शर्मा जी और मास्टर विनायक मेरी मदद के लिए बम्बई में ही थे। बम्बई में कार्यक्षेत्र बनाने के लिए इतना पर्याप्त था।

गीत क्या थे मेरे लिए, यह मैं स्वयं नहीं समझ पाता था, किन्तु मेरा अन्तर्मन गीतों को लेकर बहुत ही बेचैन रहा करता था। मैं उन गीतों को खोजता था जो मेरी आंखों से आंसू बनकर बरसते रहते थे। मैं इन गीतों की तलाश में कस्तूरी मृग की भाँति चारों दिशाओं में दौड़ता रहता था। इस स्थिति में आत्म विमूढ़ होकर कभी कहता-

ले एक बूँद आंसू
कब से निरख रहा हूँ
कुछ भी पता नहीं है
क्यों कर बिलख रहा हूँ ।

कभी कहता- 'ये गीत यह न जाने'। कभी कहता- 'वे गीत खो गये हैं, मेरे नयन खिलाने रोते हुए गये हैं'। इन गीतों के पीछे भागता भागता मैं उद्भ्रान्त होकर रह गया। मुझसे छिटक कर कुछ दूर एक मजेदार फासले पर ये मुझे आकर्षित करते रहे। इन्हीं गीतों ने मुझे लाहौर पहुंचाया। इन्हीं गीतों ने मुझे बम्बई पहुंचा दिया। लाहौर में मुझे इन्होंने कुछ कम सुखी नहीं बनाया और अब बम्बई में मुझे और सुखी बनाने के लिए ये गीत मरीचिका बनकर मुझे दौड़ा रहे हैं।



मैं जानता हूं सीता हरण होगा, रावण मारा जायेगा, गीत मुझे मिलेंगे किन्तु मुझे अस्तित्वविहीन बनाकर। जो भी हो, हो। मुझे इनके पीछे भागने में बड़ा मजा आ रहा है। शायद यही भागना गीत हो। यह बेचैनी मात्र फिल्मी गीतों के लिए नहीं थी। एक दो दिन आराम कर लेने के बाद मैंने सर्वप्रथम प्रकाश पिक्चर्स अन्धेरी को अजमाने का विचार किया और स्टूडियो के फाटक पर खड़े गोरखा को अपना कार्ड दिया कि वह इसे बीजू भाई (विजय भट्ट) को दे दे। बुलाहट हुई मेरी और मैं बीजू भाई के सामने उनके आफिस में पहुंच गया। वही बीजू भाई रामराज्य के निर्माता निर्देशक। बीजू भाई ने एक हल्की सी मधुर मुस्कान के साथ सामने पड़ी कुर्सी पर मुझे बैठजाने का संकेताग्रह किया। अगल बगल दो भव्य मूर्तियां मुझे विस्मित नेत्रों से हेरती हुई मिलीं। बीजू भाई ने उनका परिचय दिया। एक थे शंकर भाई (शंकर भट्ट, बीजू भाई के अग्रज) और दूसरे थे (बाबू भाई पण्डित बालचन्द्र शुक्ल, उनके सहयोगी)। मुझसे पूछा गया-पंचोली आर्ट पिक्चर्स छोड़ने का कारण, जो मैंने बता दिया। बम्बई फिल्मी दुनिया देखने का आकर्षण। वहां का संक्षिप्त समाचार, फिल्म 'कैसे कहूँ' में गीत लेखन से लेकर मधोक साहब के पंचोली आर्ट पिक्चर्स में जाने तक की कथाबता दिया। श्री दलसुख पंचोली के भव्य व्यक्तित्व एवं मृदुल स्वभाव का विवरण दिया और लाहौर छोड़नेका दुख भी बताया।

फिल्मी गीत सम्बन्धी सोदाहरण वार्ता में मैं अपनी ओर से कुछ टिप्पणी भी कर देता था। जैसे उन्हीं के ऐतिहासिक फिल्म 'विक्रमादित्य' में कालिदास के मुँह से गवाये गये गीत की स्थायी पंक्ति (जिसे मुखड़ा कहा जाता है पिफल्मी अन्दाज में) 'अजब है कुदरत की माया कि जिसका भेद समझ नहीं पाया' की। मैंने कहा कि गीत की यह भाषा कालिदास के मुँह से शोभा नहीं पाती। अजब और कुदरत शब्द के बदले 'प्रकृति की लीला बड़ी विचित्र' यदि स्थायी पंक्ति होती तो संस्कृति की रक्षा भी हो गयी होती। मेरी बातों को, मैंने भांपा कि ध्यान से सुना जा रहा है। मैं अपने उत्साह को हमेशा नियंत्रित किए रहता था कि सीमोल्लंघन न हो। ऐसा नहीं होने पाया और बाबू भाई ने कोई कविता सुनने का मुझसे आग्रह कर दिया। सभी मान्य सदस्यों की ओर आशा भरी दृष्टि से देखते हुए संक्षिप्त भूमिका देकर मैंने वही अपनी पुरानी सुपरिचित कविता सुनायी-

‘रूप भार से लदी तू चली,
तूँ चली समग्र सृष्टि ही हिली,
कली चटक चटक खिली,
पिघल बहा अचल भी, नदी समुद्र में मिली,
रूप भार से लदी तूँ चली।’



कविता जरूर लम्बी है किन्तु बहुत ध्यान और तन्मयता से सुनी गयी। सभी का मुखमण्डल प्रसन्नता से खिल उठा और बीजूभाई तथा बालू भाई एक साथ ही बोल उठे-यदि विक्रमादित्य के निर्माण के समय आप से भेट हो गई रहती तो रत्ना के सौन्दर्य वर्णन में कालिदास के मुँह से यही गीत हम लोगों ने गवाया होता। भेटवार्ता देर तक होती रही। दो-चार दिनों तक मुझे आते जाते रहने का अवसर देकर मुझे प्रकाश पिक्चर्स के गीतकार के रूप में नियुक्त कर लिया गया श्री रमेश गुप्त के स्थान पर क्योंकि वे प्रकाश पिक्चर्स से सेवामुक्त हो चुके थे। उन्होंने अनेक वर्षों तक प्रकाश पिक्चर्स में इसकी विभिन्न फिल्मों में गीत लिखे थे जैसे-रामराज्य और भरत मिलाप आदि। एस एन त्रिपाठी और नौशाद ने भी अपने कैरियर के आरम्भ में कुछ नामी और हिट फिल्मों में संगीत दिये थे प्रकाश पिक्चर्सकी। इन दिनों शंकरराव व्यास संगीत निर्देशन का कार्यभार सम्भाले हुए थे। भरपूर नाम और धन कमा लेने के उपरान्त प्रकाश पिक्चर्स की प्रसिद्ध फिल्म 'बैजू बावरा' में नौशाद साहब ने ही संगीत दिया था।

फिल्म विक्रमादित्य पिट गई थी। बाक्स आफिस पर और पंचोली आर्ट पिक्चर्स की भव्य क्लासिकल फिल्म 'शीरी फरहाद' का बड़ी गहरी कीमत चुका कर किया गया सौदा बहुतमंहगा साबित हुआ था। अतएव प्रकाश पिक्चर्स का काम धाम कुछ मन्द पड़ गया था। शंकर भाई प्रबन्ध विभाग सम्हालते थे और बीजू भाई निर्देशन और निर्माण का उत्तरदायित्व वहन करते थे। कम्पनी में कोई खिच खिच नहीं थी। इन दिनों खोई प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त करने की गहरी चिन्ता में मालिक लोग पड़े हुए थे। ऐसे ही वातावरण में प्रकाश पिक्चर्स में गीतकार के पद पर मेरी नियुक्ति हुई थी। बीजू भाई अपनी प्रतिष्ठा पिक्चर 'समाज को बदल डालो' के निर्माण का ऐलान कर चुके थे।

सभी मेरी सफलता से प्रसन्न थे। श्री जवाहर लाल शर्मा से भी मैं मिला तो वे बेहद खुश हुए। मास्टर विनायक राव प्रफुल्ल पिक्चर्स के मालिक से भी प्रसन्न हुए। उनकी बड़ी प्रतिष्ठा की फिल्म रिलीज हो चुकी थी जिसमें मेरे गीत बहुत सराहे गये थे। गुजराती सिनेपत्र 'वीणा' ने तो मेरी प्रशंसा में अपनी कलम ही तोड़ दी थी। पत्र ने सुभद्रा फिल्म की तारीफ के सिलसिले में लिखा था- 'एना माटे जे नवीन गीतकार मोती बी ए छे तेना भविष्य उज्जवल दिखाहया पड़े छे। एक एक शब्द तोलि तोलि ने लिखे छे। कांय शब्द खोटा न थी... ...' वगैरह वगैरह। मेरे ये सुनहरे दिन थे। लाहौर की मनहूसियत मेरे लिए आई गई हो गई। दादर कीर्तिकर वाड़ी में रहते हुए मैं नित्य प्रकाश पिक्चर्स स्टूडियो में जाता, बीजू भाई और बालू भाई से मिलकर कुछ गीत, कुछ कविता सुनाकर चला आता। फिल्मी कलाकारों को देखने सुनने का सौभाग्य मिला हुआ था। कला निर्देशक कनु देसाई, अभिनेता जीवन और रामराज्य-भरत मिलाप के राम प्रेम अदीब से भेट मुलाकात होती





‘समाज को बदल डालो’ के लिए बीजू भाई एक नए ताजे अच्छे संगीत निर्देशक की फिक्र में मुझसे कहने लगे कि अपने ही समान आप कोई संगीतकार अपने क्षेत्र से ले आइए। जंचेगा तो कम्पनी में हम उसे नियुक्त कर लेंगे। मुझे लखनऊ आकाशवाणी के संगीत निर्देशक जंगबहादुर की याद आई जिन्हें मैं लाहौर में पंचोली आर्ट पिक्चर्स में बुलाया था जहाँ दुर्भाग्य से नहीं चान्स मिला। मैंने उन्हें तार दिया और वे पहुंच भी गये। मालिकों ने उनका संगीत हारमोनियम पर सुना। वे लोग बेहद सन्तुष्ट और प्रसन्न हुए। संगीतकार के पद पर उनकी नियुक्ति हो गयी। दादर में हमारेमित्रगण यह चमत्कार देखकर दंग रह गये। प्रकाश पिक्चर्स का वातावरण गरम हो उठा। मैं सबकी आंखों में चढ़ने-उतरने, गड़ने-चुभने लगा तथा ईर्ष्या का पात्र हो गया। मेरी बातों पर आपको यकीन नहीं होता होगा किन्तु मेरी यह बात सोरहो आने सही है। यदि यकीन नहीं आ रहा है तो धैर्य धारण कीजिए। अगले कुछ ही पन्नों में आपका यकीन मेरे प्रति आपकी हमदर्दी में बदल जायेगा। जिस समय की बात मैं लिख रहा हूँ उस समय प्रकाश पिक्चर्स में मैं ही मैं था। जितने कर्मचारी थे कम्पनी के सब आश्चर्यचकित थे कि बनारस का यह छब्बीस-सताइस वर्षीय नवजवान बड़ा चमत्कारिक निकला कि अपने तो अपने एक दूसरे व्यक्ति को भी जो इसका साथी है, कम्पनी का म्यूजिक डाइरेक्टर बना दिया। ईर्ष्या की आग भड़क उठी। कम्पनी में एक और युवक था जो क्लैप ब्वाय का काम करता था। वह जैनपुर का था, बी ए पास था। उसे मेरे बारे में पूरा मालूम था किन्तु उसको मैं बिल्कुल नहीं जानता था। वह चाहते हुए भी मेरे पास आने में हिचकता था। उस बालक से मेरी मुलाकात हुई सन् 1952 जून-जुलाई में जब मैं बम्बई को अन्तिम प्रणाम करके रोगी बनकर अपने गांव वापस आ गया था और वह बालक न जाने कब बम्बई से अपने गांव आकर नायब तहसीलदारी की परीक्षा पास कर सलेमपुर में नायब तहसीलदार के पद पर कार्यरत था। उसे पता चला कि मोती बीए बम्बई से यहाँ अपने गांव बरेजी आ गये हैं और बरेजी सलेमपुर हल्के में ही पड़ता है तो वह सुधि बुधि खोकर दौड़ पड़ा मेरे गांव। जो व्यक्ति प्रकाश पिक्चर्स, अन्धेरी, बम्बई में मुझसे नहीं मिल सका वही व्यक्ति अब मेरी तहसील का हाकिम बनकर किन्तु ‘क्लैप ब्वाय’ की हैसियत में ही मेरे सामने खड़ा था। विचित्र मिलन था। बहुत से लोगों को अपने उस मिलनसार, हमदर्द, गरीबनेवाज तहसीलदार का नाम याद होगा। उनका नाम था विजयनाथ त्रिपाठी जो अब इस दुनिया में नहीं है। वे यदि असमय स्वर्गवासी न हुए होते तो फिल्म निर्माण की मेरी महत्वाकांक्षा पूर्ण हो गयी होती। फिल्मों की ताकत से कौन अवगत नहीं है कि एक अच्छी फिल्म विचारों में क्रान्तिकर सकती है। जमाने का रुख पलट सकती है। पता नहीं मुझमें कौन सी खामी है कि मेरे अपने ही लोग मुझसे कट जाते हैं, मन ही मन मुझसे ईर्ष्या करते हैं



और खुली अवज्ञा या उपेक्षा नहीं तो औपचारिक सम्मान कर देते हैं। मैंने अपने को बदनामी से बचाते हुए देवरिया शहर की प्रत्येक गली को सूंधा है, बरहज नगर के प्रत्येक चमकीले चौखट को छूमा है, बड़े भाइयों से लेकर छुट भाइयों तक सभी की आंखों में आंख डालकर गहराई तक झांका है किन्तु कहीं कोई ऐसा नहीं मिला जो मेरे हृदय के गहरे घाव को देखता जबकि देवरिया-गोरखपुर की गलियों में प्रत्येक घर में फिल्म कम्पनियां बन गई हैं और सीरियलों की धड़ाधड़ ख्याली सूटिंगें चल रही हैं। अपनी निजी औकात में अपने ही घर की बात क्या करूँ? अपने बल पर सत्तर हजार रूपये 'गजब भइलें राजा' (भोजपुरी फिल्म) पर लगा चुका हूँ और इसके मालिकों से धोखा खा चुका हूँ।

मैं अपनी सफलता और असफलता का रोना नहीं लिख रहा हूँ। मैं जमाने की खूबी का बयान कर रहा हूँ और जिन्दगी के अरमानों की नाप-तौल कर रहा हूँ एक जमाने से जब मैं फिल्मी दुनिया में दाखिल हुआ। प्रकाश पिक्चर्स में निःसन्देह मेरी तूती बोलती रही किन्तु कटुवे भाई लोग मच्छरों की तरह बीजू भाई के इर्द गिर्द एकत्र होने लगे। 'समाज को बदल डालो' अपनी प्रतिष्ठा फिल्म है। आपकी इज्जत दांव पर है। ऐसी हालत में दो अनसिखुए छोकरों को गीत और संगीत जैसा उत्तरदायी काम दे डाल रहे हैं। बड़ा बुरा होगा इसका नतीजा। आप मार खा जायेंगे बाजार में। ऐसी गलती हरगिज न करें।' नतीजा यह हुआ कि गीत और संवाद कमर जलालाबादी और संगीत खेमचन्द्र प्रकाश को दे दिया गया। हम दोनों को 'समाज को बदल डालो' से फुरसत मिल गयी। नौकरी का जो अनुबन्ध पत्रक था 6 महीने बाद स्थायी किया जाने वाला था, वह भी मालिकों की मरजी पर। मालिक चाहें तो रखें चाहें न रखें। छः महीने तक हम वेतन उठाते, बाद में निकाल दिये जाते। यह बात दो तीन महीनों में मैंने भी जाना और जंग बहादुर ने भी जाना। जंगबहादुर बेचारे वैसे ही अपने परिवार के लिए चिन्तित रहा करते थे। प्रकाश पिक्चर्स की दो-तीन महीनों की नौकरी को लात मारकर वे लौट गये लखनऊ। लेकिन मैं कहां जाता? दो तीन महीनों की तनख्वाह उठा लूं तो सही। देखा जायेगा आगे। बम्बई है यह महानगरी। मौके की नजाकत मैंने समझी। चुनौती मंजूर कर लिया।

कीर्तिकर बाड़ी दादर (पश्चिम) में ठाकुर ध्रुवराज सिंह के आवास पर मेहमान के रूप में रहते हुए अपने लिए एक खोली की (कमरे की) खोज होती रही और बड़ी मेहनत के साथ ठाकुर तालुकेदार सिंह ने अपने घनिष्ठ मित्र आजमगढ़ के निवासी ठाकुर रामस्वरूप सिंह की मदद से कुर्ला पश्चिमी बेलग्रामी रोड पर स्थित एक चाल में एक खोली किराए पर तय कर दी। ठाकुर राम स्वरूप सिंह भी एक स्कूली टीचर थे जो इसी चाल में रहते थे।



यह चाल मिरजापुर के मनुदत्त त्रिपाठी की थी और जो कमरा मेरे लिए ठीक किया गया उसमें हिन्दी के विख्यात लेखक पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' कुछ वर्ष तक रह चुके थे। जंगबहादुर और मैं, दोनों कीर्तिकर बाड़ी से कुला अपने कमरे में चले आये। यहाँ से हम दोनों प्रकाश पिक्चर्स, अन्धेरी आते जाते रहते थे। सन् बयालिस के 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आन्दोलन के बाद देश कुछ वर्षों तक ठण्डा पड़ा रहा। धीरे धीरे आजादी की लड़ाई की सरगर्मी फिर बढ़ने लगी थी। आजाद हिन्द फौज के सैनिकों पर गोरी सरकार मुकदमा चलाकर उनका कोर्ट मार्शल करना चाहती थी। पण्डित जवाहर लाल नेहरू को सरकार ने जेल से बाहर कर दिया था। नेहरू जी ने आजाद हिन्द फौज के सैनिकों का वीरोचित पक्ष लेकर देश में नव जागृति का मन्त्र फूंक दिया था और भारत की जनता नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के नाम पर एक बार फिर मरने मारने को उठ खड़ी हो गई थी। पं जवाहर लाल नेहरू ने अंग्रेजों की अदालत में बहस न करने का अपना व्रत तोड़ दिया और बैरिस्टरी का अपना गाउन पुनः धारण कर लिया। यह फिजा देखकर गोरी हुकूमत दहल गई। इसी माहौल में हम दोनों प्रकाश पिक्चर्स में चक्कर खा रहे थे। हीरो बनाकर प्रकाश पिक्चर्स ने हम दोनों को अपनायाथा और एकस्ट्रा के रूप में विदाई की हरी झंडी दिखा दी। कभी कभी जंगबहादुर और हम दोनों परस्पर झगड़ जाते थे। कोई काम न करना और तीन चार महीनों तक प्रकाश पिक्चर्स में हाजिरी बजाकर मुंह लटकाये घर लौटना हम लोगों का नसीब हो गया।

मैंने अपनी तरक्स का दूसरा तीर निकाल लिया और उसके सन्धान पर पुनः युद्ध छेड़ दिया। इस बार मेरा लक्ष्य बना फिल्मस्तान लिमिटेड। लाहौर में रहते हुए फिल्मस्तान से लिखा पढ़ी करके मैंने मिलने जुलने का रास्ता बना लिया था और इसके मैनेजिंग डायरेक्टर रायबहादुर चुन्नीलाल से मिलने का निश्चय किया जो माटुंगा पूर्वी में किंग्स सरकिल के अपने आफिस में मौजूद थे। कार्ड पर उनके आफिस में मेरी पेशी हुई। रायबहादुर ने मुझे गोरेगांव में स्थित फिल्मस्तान लिके स्टूडियो में जाकर अशोक कुमार और एस मुखर्जी से सम्पर्क कायम करने को कहा। अब मैं गोरेगांव फिल्मस्तान लिके बाहरी गेट पर गोरखा के सामने उपस्थित था। मुझे स्टूडियो में प्रवेश करने का आदेश मिला। अशोक कुमार के आफिस में पहुंचने पर मुझे कुछ देर इन्तजार करने को कहा गया। अशोक कुमार और एस मुखर्जी किसी कहानी पर विचार कर रहे थे भीतरी कक्ष में, जिसके बाहर एक कुर्सी लगाकर एक मोटा तगड़ा व्यक्ति टेबुल पर कुछ लिख पढ़ रहा था। वह नकल नवीस था। कक्ष के भीतर कहानी लेखक एस एच मण्टो साहब भी थे। उन्हीं की स्टोरी थी 'एट डेज' (आठ दिन जो अशोक कुमार प्रोड्यूस कर रहे थे)। मैं कुछ दूर कुर्सी पर बैठा प्रतीक्षा कर रहा था और वह मोटा तगड़ा व्यक्ति समय समय पर मुझको भांपने के लिए देख लिया करता था।





था। उसके बारे में मैं सही आइडिया बना चुका था कि हो न हो ये ही हैं मेरे रास्ते के कांटे। लाहौर में भी पंचोली में ये कांटे गड़े थे और प्रकाश पिक्चर्स अन्धेरी में कभी कभी गड़े हैं ये कांटे। आफिस के भीतर से अशोक कुमार साहब कुछ हेरते हुए शायद मुझे ही, आए। उनको सामने देखकर मैं कुर्सी से उठा। प्रसन्न होकर और अपनी सहज मुस्कान बिखेरते हुए वह बैठ गये कुर्सी पर यह पूछते हुए कि आप हीं पंचोली से आए हैं गीतकार मोती बी ए ? मैंने नम्रता से स्वीकृति सूचक भाव व्यक्त करते हुए मौन स्वीकृति दे दी। उन्होंने कहा कि ठीक है, आपसे मिल कर खुशी हुई। आप गीत लिखते हैं तो कोई सुनाइए। मैंने गीत सुनाने का मूड बनाया। गला ठीक करने के लिए जरासा खांसा और शीशी में शहद भरने की भाँति मन्द स्वर में गुनगुनाया। अशोक कुमार ने मुझे रोक कर पूछा कि आप सस्वर सुनाते हैं या शब्द पाठ करते हैं ? मैंने कहा श्रीमान् मैं गाता नहीं, भावपूर्ण सस्वर कविता या गीत सुनाता हूं। अशोक कुमार ने कहा-अच्छा है, सुनाइए। मैंने गीत की एक कड़ी सुनाई - 'जिन्दगी का कारवां कहां चला' तब तक अशोक कुमार ने पुनः रोका और कहा-रुकिए जरा मैं मुखर्जी साहब को भी बुला लूँ। वे उठकर अपने कमरे में चले गये और दो मिनट बाद वे मुखर्जी साहब के साथ आकर कुर्सी पर जम गए और बोले- 'हां अब सुनाइए अपना गीत।' उनके आते ही मैं कुर्सी से उठ गया और बा अदब मुखर्जी साहब को हाथ जोड़कर नमस्कार किया। उनकी भरी भरी भावपूर्ण आंखें (जो अभी तक याद हैं) मुझ पर टिक गयी। मुखर्जी साहब फिल्मस्तान लि के प्रोडक्शन इन्वार्ज थे। मेरी गुनगुनाहट शुरू हो गई-

जिन्दगी का कारवां कहां चला ।

आंखों में बह रहा तूफान

होठों पे कांप रही फीकी मुस्कान

बतलाए कौन भला

आशा का बाग कहां फूला फला

जिन्दगी का करवां कहां चला ।

मैं लगातार एक पर एक गीत उनको सुनाने लगा। मैं उत्साह से भरा हुआ था। आखिर यह सिलसिला थमा और दोनों साहब यह कहते हुए खड़े हुए कि आप स्टूडियो में रोज आते रहें और हमसे मिलते रहें। चपरासी को हुक्म दिया उन्होंने कि पण्डित जी को कैण्टीन में ले जाकर नाश्ता या भोजन जो चाहें करा देना। फिल्मस्तान में यह मेरा प्रवेश था। वह मोटा तगड़ा युवक व्यक्ति जो स्क्रीन प्ले की स्क्रिप्ट की कापी कर रहा था यह लीला बड़े गौर से देख रहा था और मुझे लगा कि मन ही मन जखर कुछ मनसूबा बना रहा था। उस व्यक्ति का नाम था राजा मेहदी





खां जो आगे चलकर पिफल्म जगत में यशस्वी गीतकार के रूप में स्थापित हो गया।

वास्तव में फिल्मस्तान में मेरा आगमन बड़े समय से हुआ था। फिल्मस्तान से प्रदीप जी के विदा होने के बाद (चल चल रे नौजवान की असफलता के बाद) गोपाल सिंह नेपाली की गीतकार के पद पर नियुक्त हुई थी। 'शिकारी' और 'सफर' के पश्चात वे भी फिल्मस्तान छोड़ चुके थे। कम्पनी का कोई स्थायी गीतकार नहीं था। फिल्मस्तान के स्थायी गीतकार के रूप में अपनी नियुक्ति की एक सम्भावना मुझे दीखने लगी थी। बाम्बे टाकीज में नरेन्द्र शर्मा और भगवती चरण वर्मा जमे हुए थे। प्रकाश पिक्चर्स में मैं 6 महीनों की वैकल्पिक अवधि तक गीतकार के पद पर नियुक्त था। तीन महीने की अवधि पूरी हो चुकी थी। जंगबहादुर लखनऊ लौट चुके थे। मास्टर रामस्वरूप सिंह का भरपूर सहयोग मुझे मिला हुआ था। कुर्ला की अपनी चाल की कोठरी में रहता हुआ खातापकाता मस्त था और कविताओं तथा गीतों की दुनिया मेरी गुलजार थी। ठाकुर ध्रुवराज सिंह और जवाहर लाल शर्मा से मुलाकातें होती रहती थीं। वे लोग मेरी प्रगति और मेरे संघर्ष से सन्तुष्ट थे। मैंने एक कविता लिखी थी-'जीवन का विश्वास' जिसका अन्तिम चरण इस प्रकार था-

दुख नाचेगा छम छम छम
सुख गायेगा गीत
पलक ओट जब मृत्यु हंसेगी
गा जीवन संगीत
दिग्-दिगन्त में भर जायेगा
एक नया उल्लास
जीवन का विश्वास ।

मैं नित्य प्रकाश पिक्चर्स में जाकर उपस्थिति पंजिका में हस्ताक्षर करता और कुछ देर बीजू भाई और बालू भाई से बातचीत करके गोरेगांव पिफल्मस्तान लि पहुंच जाया करता था। मैं चाहता था प्रकाश पिक्चर्स छोड़ने के समय तक फिल्मस्तान में गीतकार के पद पर मेरी नियुक्ति हो जाए। इसलिए अशोक कुमार और मि मुखर्जी से मैं रोज देखादेखी करलिया करता था। अशोक कुमार प्रायः मुझसे कुछ न कुछ गीत सुनाने को कहा करते थे। मेरा एक लटकानुमा गीत-'काटे ना कटे मोर दिनवा, गवनवा कब होई', उनको बहुत पसंद था। इसके लटके की तर्ज बड़ी मस्तानी थी और इसके शब्द धुंधरू की तरह। यह गीत सुनकर अशोक कुमार का मन थिरकने लगता था। शब्द गीत के कुछ इस ढंग के थे-

मोहे जवानी सताए
बात नहीं कोई भाए





पिया के भवनवा मिलनवा कब होई।
 भइलें सजनवा सयनवा गवनवा कब होई।
 माने न कहनवा मदनवा
 गवनवा कब होई।

भोजपुरी क्रिया पद ‘होई’ का प्रयोग फिल्म में भोजपुरी के आगमन का संकेत था। मैं उन्हीं अशोक कुमार के निकट सम्पर्क में था जो दुनिया की आंखों में छाये हुए थे और मैं जिनकी आंखों में चढ़ा हुआ था। प्रकाश पिक्चर्स में हाजिरी भरकर मालिक लोगों के साथ कुछ देर रह कर सीधे गोरेगांव फिल्मस्तान पहुंच जाया करता था जहां अनेक नामी गिरामी कलाकारों के दर्शन का लाभ मिलता था। किशोर साहू का आफिस अलग था। वह फिल्मस्तान लि के बैनर पर कुछ आवश्यक सेवा कार्य सम्बन्धी शर्तों के अनुसार तीन फिल्मों के निर्माण हेतु अनुबन्धित था। उस समय वे ‘सिन्दूर’ फिल्म निर्माण की तैयारी में थे। सन्तोषी जी ‘हम एक हैं’ के बाद फिल्मस्तान में कोई फिल्म बनाने की योजना में संलग्न थे। वे स्टूडियो में आते जाते दिखाई दे जाते थे। अशोक कुमार की ‘आठ दिन’ की शूटिंग चल रही थी। पूरे स्टूडियो में चहल पहल पहल थी। दिलीप कुमार का सिक्का अभी चल नहीं रहा था। मैं प्रायः अशोक कुमार से मिलता रहता था इस आशय से कि ये बड़े नेक व्यक्ति हैं, मुझ से प्रभावित हैं, जरूर कोई न कोई चान्स, सेवा का मिल जायेगा। रायबहादुर चुन्नीलाल हफ्ते में दो-तीन दिन स्टूडियो के अपने आफिस में बैठते थे। मैं उनसे भी मिल लिया करता था। यदि अशोक कुमार मेकअप रूम में होते, मेकअप करते हुए खुद अपना, तो मैं भी उनके पास होता था और अशोक साहब कह बैठते कि मि मोती ! जरा सुनाओ गवनवा वाला गीत। उन्होंने मेरा नाम ही रख दिया था मि गवनवा।

यह सब कुछ था मगर गीत लिखने का कोई चान्स नहीं मिलता था। मैं धीरे धीरे ऊबने लगा और आशा, हताशा के रूप में ढलने लगी। सोचता कि जब अशोक कुमार इस गीत से इतने खुश हैं तो ‘आठ दिन’ में इसे क्यों नहीं खपा लेते ? चालू गीत है जरूर हिट हो जाता। मगर अशोक कुमार सही अर्थों में अभिनेता थे। मेरे साथ उनका प्रेमपूर्ण व्यवहार भी एक अभिनय ही था। किन्तु मैं उनपर विश्वास कर बैठा था कि ये मेरी मदद करेंगे। मेरा यह विश्वास डगमगाने लगा। मुखर्जी साहब भी मेरे लिए सीधे कुछ नहीं करते। इस जाल में मैं अपने स्वार्थों के कारण फँसा था। यदि निकल जाता बाहर इस जाल से तो किसी को कोई फिक्र नहीं होती क्योंकि यहां तो ‘एक बुलाओ चौदह धावो’ की बात थी। राय बहादुर चुन्नीलाल भी मुझसे प्रभावित थे। मैं उन्हें भी गीत सुनाता था। वे भी शब्दों से मुझे भरोसा देते रहते थे। इस तरह एक महीना बीत





गया। कोई काम नहीं हुआ।

एक दिन मुखर्जी साहब के जीने से उतरने हुए सन्तोषी जी मिल गये। वे पूछ बैठे-कहिए मोती जी, कुछ काम हुआ ? मैंने अपनी पूरी हैरानी उन्हें बता दी। उन्होंने कहा कि इस तरह यहां कुछ भी नहीं होगा। आप घूमते और मिलते जुलते ही रह जायेंगे। चलिए मेरे साथ किशोर साहू से मिलवाता हूँ। वे सिन्धूर बना रहे हैं। पिक्चर बनना अभी शुरू ही हुआ है। वे साहित्यकार हैं। आपको वे समझेंगे। वे मुझे अपने साथ किशोर साहू के दफ्तर ले गये। मेरा परिचय उनसे करा दिया। सन्तोषी जी इसके बाद चले गये। साहू साहब से मेरी बात शुरू हुई। साहू साहब ने मुझसे ज्यादा बातचीत नहीं की। एक सिचुयेशन स्वागत गीत का उन्होंने लिखने को कहा। यह गीत खुशी और उल्लास का था। दूसरे दिन मैंने गीत लिखकर उन्हें सुनाया। वे सन्तुष्ट हुये और दूसरा मेले में नाच का दियाजो युगल गान था मगर नायक नायिका का नहीं। इस गीत का लटका बहुत खूबसूरत और रोमांटिक था। यह गीत भी उन्होंने पसन्द कर लिया। कुछ दिन के बाद और सिचुयेशन देने को उन्होंने कहा। पहले गीत की तर्ज बनने लगी। खेमचन्द्र प्रकाश संगीत निर्देशक थे।

इस प्रकार दूसरे महीने फिल्मस्तान में मुझे कुछ सफलता मिली। इन दोनों गीतों को लेकर मैं रायबहादुर चुन्नीलाल से मिला और आग्रह किया कि वे मुझे गीतकार के पद पर नियुक्त कर लें। उन्होंने ऐसा करने का वचन दिया। इधर प्रकाश पिक्चर्स से 6 महीने के सेवा कार्य के उपरान्त मुक्त हुआ और उधर फिल्मस्तान के साथ मेरा अनुबन्ध हो गया। फिल्मस्तान में मेरा पहला गीत जो कजरीनुमा था रेकार्ड कर लिया गया। राजा मेहदी अली खां यह सब देखते रहते थे। मेरा हाल चाल पूछते रहते थे। दोनों में दोस्ती हो गयी थी। मेरी सफलता पर उन्हें खुशी थी। वे अशोक कुमार के 'आठ दिन' नामक फिल्म में सहायक कर्मचारी थे। मण्टो साहब के साथ बराबर रहा करते थे। सन्तोषी जी की मेहरबानी का यह सुफल था जो मुझे मिला। वे फिल्मस्तान में 'शहनाई' का निर्देशन कर रहे थे। उन्हीं की कहानी, उन्हीं के संवाद, उन्हीं के गीत और उन्हीं का निर्देशन। सी रामचन्द्रन ने 'सफर' फिल्म का सफल संगीत निर्देशन किया था। इसके सभी गीत बहुत पसन्द किए गये थे। 'गली पार करके' वाला गीत गली गली बज रहा था। 'शहनाई' फिल्म का संगीत निर्देशन कर रहे थे। सी रामचन्द्रन से भी मेरा परिचय हो गया था। कुर्ला बेलग्रामी रोड पर स्थित सिद्ध महल चाल जिसमें मैं रहता था उसका वातावरण ठीक नहीं था। जो भइया लोग (पूर्वी उत्तर प्रदेश निवासी) उसमें रहते थे वे मुझसे ईर्ष्या करते थे और मराठी, पंजाबी वगैरह उपेक्षा करते थे। पढ़े लिखे उसमें कम थे। मास्टर रामस्वरूप जी ही एक सज्जन व्यक्ति थे जिनकी सहानुभूति मेरे साथ थी किन्तु वे अल्पमत में थे। मुझसे अक्सर भइयों से ठन जाया करती थी। इसलिए मैं 'सिद्धमहल' लगाता



छोड़ना चाहता था। गोरेगांव नियमित अन्धेरी होकर जाता था। एक दिन जब मैं अन्धेरी स्टेशन रोड से जा रहा था एक कार मेरी बगल में रुकी। मैंने मुड़कर देखा तो बीजू भाई (विजय भट्ट) थे कार में जो मुझको आवाज दे रहे थे। मैं कुछ चकित हुआ। बीजू भाई मुझसे प्रकाश पिक्चर्स की दूसरी फिल्म (निर्माणाधीन) 'भक्त ध्रुव' के लिए गीत लिखने को कह रहे थे। 'भक्त ध्रुव' का निर्देशन शान्ति भाई कर रहे थे जिसका संगीत रामराज्य और भरत मिलाप की ख्याति वाले शंकर राव व्यास दे रहे थे। यह जानते हुए कि मैं फिल्मस्तान में नियुक्त और सेवारत हूँ, बीजू भाई आग्रह कर रहे थे जिसको मैं अस्वीकार नहीं कर सकता था।

गीतों के संघर्ष में यह मेरी जीत थी। जिस प्रकाश पिक्चर्स ने मुझे गीत लिखने का अपने यहां अवसर न देकर मुझको अपनी सेवा से विरत कर दिया आज वही प्रकाश पिक्चर्स मुझसे गीत लिखने का आग्रह कर रहा है। मैंने 'भक्त ध्रुव' के लिए तीन गीत लिखे जिनमें ध्रुव की कठोर तपस्या पर रीझकर विष्णु भगवान के अवतरित होने पर उनका नख शिख वर्णन किया गया है। फिल्म में यह गीत बहुत सराहा गया। गीत की स्थायी पंक्ति है- 'प्रभु अपनी झलक दिखाओ'।

इस प्रकार मेरे संघर्ष का रूप निखरता जा रहा था। 'समाज को बदल डालो' के बाद बीजू भाई ने अपने क्लासिकल फिल्म 'राम बान' में भी गीत लिखवाया था। लक्ष्मण को शक्ति बान लगने से मूर्छित होने पर राम के विलाप के सिचुयेशन के वास्ते। गीत की स्थायी पंक्ति थी-'उठ लखनलाल प्रिय भाई'। यह गीत भी सफल था किन्तु 'राम बान' फिल्म असफल रही। 'भक्त ध्रुव' फिल्म बहुत सराही गयी। किन्तु 'समाज को बदल डालो' कोई खास नहीं रही। प्रकाश पिक्चर्स और फिल्मस्तान दोनों कम्पनियों का मैं गीतकार था। मेरी स्थिति संघर्ष में होते हुए सुदृढ़ हो चली थी। फिल्मस्तान में मेरा पहला गीत जमता हुआ नहीं लग रहा था प्ले बैक सिंगर की आवाज के कारण। गीत ठीक था मगर सिचुयेशन बदल दी गयी और मेरा वह गीत पर्दे पर नहीं जा सका। इन्हीं अवस्थाओं में बम्बई में हिन्दू मुसलिम दंगा भड़क उठा। कुर्ला में रहना मेरे लिए उचित नहीं था। लाहौर से आए एक वर्ष से अधिक हो चुका था। गांव छोड़े काफी दिन हो गये थे। इसलिए मैं सारे सामान के साथ गांव के लिए रवाना हो गया। मेरे मित्र भगवान प्रसाद त्रिपाठी ने वर्धा में एक प्रिंटिंग प्रेस कायम कर लिया था और एक छोटा सा अखबार भी निकालने लग गये थे। मैं अकेले बम्बई से अपने गांव चला आया। बम्बई में अपने लिए खड़े होने लायक जमीन मैंने तैयार कर ली थी किन्तु उसमें स्थिरता नहीं थी। मैंने गांव आने का निर्णय गलत समय पर कर लिया था। यह समय 'सिन्दूर' फिल्म में गीत लिखने का था। यदि ऐसा मैंने कर लिया होता तो जमीन जहां मैं हिलते डुलते पैरों पर खड़ा था, स्थिर हो गयी होती। गांव पर यदि आया भीतो कुछ दिन रहकर दंगा शान्त होने की





हालत में मुझे तुरन्त बम्बई आ जाना चाहिए था। किन्तु मैंने ऐसा नहीं किया। गांव परसाल भर तक मैं रह गया। बहन की शादी तय करना और तिलक विवाहादि कार्यों में जी तोड़ परिश्रम करना आवश्यक था मेरे लिए। मेरे नाम के साथ फिल्मी मुहर लग गयी थी। मैं चर्चा का विषय बन गया था। लोग मुझसे मिलने, देखने, सुनने को बेताब रहा करते थे। निन्दा का बाजार भी कम गरम नहीं था। 'सिद्ध महल' कुर्ला के मालिक मिर्जापुरिया पं मनुदत्त त्रिपाठी अकारणमुझसे असन्तुष्ट रहा करते थे। मुझ पर चरित्रहीनता का लांछन उन्होंने लगाया और काशी में कवि मित्रों के बीचकुछ झूठी बातें फैला दी थी। मेरे मित्र भगवान प्रसाद त्रिपाठी ने इन सारी बातों का हवाला अपने पत्र में दिया। मैं जल भुन कर रह गया। इन कारणों से मैं और भी परीशान था। इधर बम्बई में साम्प्रदायिक दंगे जोर पकड़ने लग गये थे। फिल्मस्तान में मेरी नियुक्ति हो चुकी थी। मैं किशोर साहू की फिल्म 'सिन्दूर' में गाने लिख रहा था। दो गीत रिकार्ड भी कर लिए गये थे। आगे के सभी गीतों को मुझे ही लिखना था। किन्तु मैंने फैसला कर लिया गांव जाने का। सन् 1946 के उत्तरार्द्ध में वी टी से काशी एक्सप्रेस से अपने गांव की ओर मैं चल पड़ा।

फिल्म संसार में टिकना आसान नहीं। कामयाबी बगैर आत्मसमर्पण के हासिल नहीं होती। फिल्म संसार चाहता है अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दो- तन, मन, धन ही नहीं दीन ईमान भी। मेरे पिताजी कहा करते थे कि संसार में यदि बुलन्दी पर जाना हो तो सुनो-

मिटा दे अपनी हस्ती को
अगर कुछ मर्तबा चाहे
कि दाना खाक में मिलकर
गुले गुलजार होता है।

जब तक बीज की तरह माटी में मिल नहीं जाओगे तब तक बुलन्दी का अंखुवा प्रस्पष्टित नहीं होगा।

मेरा एक दोस्त प्रोड्यूसर एस पी श्रीवास्तव, जो गोरखपुर या बस्ती जिले का था, वह हम उम्र था। एक दिन 1980 में मुझे ढूँढता हुआ वह बरहज मेरे मकान पर आया। वह आधा बूढ़ा आधा जर्जर और आधा अन्धा हो चुका था, बड़ा क्षुब्ध, दुखी और खिन्न था। मेरा घर, द्वार, हाता, बंगला और मुझे स्वस्थ, प्रसन्न देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और बैठते ही बोला-'मोती, मैं तुम्हारे भाग्य से ईर्ष्या करता हूँ। तुमने बम्बई छोड़ दिया, बहुत अच्छा किया। मुझे देखो, अब मैं कहीं का नहीं रहा।'





श्रीवास्तव देर तक रहा और चला गया। मैंने उसे बस में बिठा दिया। एक साधारण युवक था श्रीवास्तव जब बम्बई गया था। फिल्मस्तान में किशोर साहू के यहां प्रोडक्शन इन्वार्जी करतेकरते वह प्रोड्यूसर हो गया। चार-पांच सफल पौराणिक फिल्में बनाकर धनी हो गया। बंगले और कार वाला हो गया। एक बड़ी पिक्चर मधुबाला को लेकर बनाने लगा। प्रोडक्शन के दौरान लाखों में वह फिल्म बिक भी गयी। तीन चौथाई बन भी गई। इस बीच मधुबाला बीमार पड़ी। दवा कराने वह्यूरोप गयीं और वहीं मर गयीं। श्रीवास्तव के हाथ के तोते उड़ गये। उसकी फिल्म पूरी नहीं हुई। लाखों का कर्जदार हो गया वह। उसने एक इसाई औरत से शादी कर ली थी। दो तीन बच्चे भी पैदा कर लिए उसने। उसकी कोठी, बंगला, कार सब बिक गये। वह दिवालिया हो गया। सड़कों पर मारामारा फिरने लगा। उसके गांव पर उसकी स्त्री और बच्चे थे जिनको वह बहुत पहले छोड़ चुका था। अब श्रीवास्तव न घर का रह गया था न घाट का।

मैंने बम्बई छोड़कर अच्छा किया या बुरा, इसका फैसला मैं नहीं कर सकता। एक बात का मुझे बराबर ख्याल रहता था। वह बात है नेक नीयति और सच्चाई। प्रेम, सच्चाई, विश्वास और लगन यही मेरी पूंजी थी जिसके बल पर मैंने संसार यात्रा की। मैं झूठा कहीं भी नहीं रहा और सच्चाई से कभी मुँह नहीं मोड़ा। परिस्थितियों का डंटकर मुकाबला किया। परिस्थितियां मेरा साथ देने देने मैं परिस्थितियों को हमेशा कन्धा दिये रहता हूं। ये चाहे कुछ भी करें मुझे तोड़ नहीं सकतीं।

बीज बनकर मैं भी बम्बई में तपा, गला और खपा अंकुरित भी हुआ, विकसित भी, किन्तु फूला फला नहीं। मैं घर छोड़कर फूलना फलना नहीं चाहता। घर का न हुआ तो मैं किसी का कैसे हो सकता हूं ? किन्तु हाय री विचार और विचार संगत कार्य करने की विडम्बना। जब घर भी साथ छोड़ दे तो किस सिद्धान्त के सहारे चलूँ ? इसी दशा में ईश्वरत्व का बीज अंकुरित होता है। चूंकि संस्कार अच्छे रहे, कदम सही रास्ते पर चले इसलिए ईश्वरत्व का यह सहारा बड़े मौके से मिला और मैं आत्मनाश से बच गया। मैं घर, गांव, परिवार, रिश्तेदारी में पूरी तौर पर लिप्त हो गया था।

किशोर साहू की जुबली मनाने वाली फिल्म में मैं गीत लिख रहा था। एक गीत की रेकार्डिंग हो चुकी थी दूसरा स्वीकृत हो चुका था। किन्तु ऐसे मैं जरा सी बात पर बहाना लेकर मैं बम्बई से घर चला आया था। यह शायद घर की याद थी जो चोरी चोरी जोर मार गयी और दिल के भीतर सेंध मार गई। मैंने गलती की या सही, इस बात पर न तो मैंने कभी सोचा और न कभी पश्चाताप किया। फिल्मस्तान से नौकरी छूट जाने के बाद फिल्मस्तान के ही एक मेरे हमदर्द दोस्त मिस्टर एस एल पुरी (अभिनेता और कर्मचारी) ने कहा था मेरी बेकारी और मजबूरी देखकर कि मोतीभाई ! सोने की चिड़िया आपके हाथ पर आकर खुद ब खुद बैठ गयी लेकिन



आपने उसकी कद्र नहीं की। मैं उनकी बात सुनकर मन मसोस कर रह गया था। लेकिन अब तो मैं अपने गांव में घर पर था। माँ बाप की सेवायें, घर गृहस्थी के प्रपंच में, गृहस्थी में, साहित्यिक समारोहों में फिल्मी गीतकार की हैसियत से मजे लूट रहा था। एक तरह से मैं बम्बई को भुला बैठा था। फिल्मस्टान लिमिटेड से बुलाहट के तार पर तार आने लगे। धमकी भी दी गयी कि नौकरी से हटा दिए जाओगे। सिन्दूर के गीतों के स्थल भी भेजे गये कि विलम्ब हो आने में तो गीत ही लिख भेजो। मैं लगभग एक वर्ष तक विभिन्न कार्यों में संलग्न रहा। मेरे दो संग्रह तैयार हो गये जिनको मैंने 1972 में 'मधुतृष्णा' और 'प्रतिविम्बिनी' के नाम से प्रकाशित किया। 'आंसू झूबे गीत' 'हरसिंगार के फूल' और 'बादलिका' नाम के संग्रह लाहौर में ही तैयार हो चुके थे। 'पायल छम छम बाजे' भी आधा पूरा हो चुका था। ये सभी संग्रह एक ही साथ सन् 1972 में भोजपुरी प्रेस, जगतगंज वाराणसी से डॉक्टर स्वामीनाथ सिंह की देखरेख में प्रकाशित हुए थे। एक प्रकाशन संस्था निजी अपनी भी थी जो अब भी है (यानी 1992 में) जिसका नाम है जवाहर प्रकाशन। इस समय मेरे संरक्षक थे गाजीपुर के सरकारी अधिवक्ता श्री भागवत मिश्र जो थे तो 55—56 वर्ष के किन्तु मेरी कविताओं के अनन्य प्रशंसक थे। उनके यहां मैं बराबर जाता था। उनका आवास मेरा दूसरा घर था। कवि गोष्ठियों का उनका व्यसन निराला था। श्रीकृष्ण राय, हृदयेश, श्री राम सिंह गहलौत, पं श्रीनाथ मिश्र, बेखुद रिजवी नित्य सन्ध्या समय एकत्र होते थे। केन्द्र में मैं होता।

मेरा दूसरा केन्द्र था हिन्दी साहित्य परिषद बरहज और बाबा राघवदास जी का आश्रम। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षायें हुआ करती थीं। पं सिंहासन त्रिपाठी की देखरेख में एक विद्यालय चलता था जिसमें साहित्यरत्न तक पढ़ाई होती थी। इसके स्नातक एवं अध्यापक सभी साहित्य के रंग में रंगे रहते थे। मेरी कविताएं सभी छात्र एवं अध्यापकगण प्रेम से सुना करते थे। ब्रह्मचारी सत्यव्रत जी महाराज केन्द्रीय मनीषी के रूप में मान्य थे। वे मेरी कवितायें अपने शिष्यों के साथ प्रायः सुना करते थे। हाईस्कूल स्तर तक इलाहाबाद बोर्ड के तत्वावधान में यहां एक विद्यालय भी चलता था जिसके अध्यापकों के बीच मैं प्रायः सम्मानित होता रहता था। गांव पर मैं अपने घर पर कम ही रहता था। कविताओं की लहर में बहता रहता था। गोरखपुर में भी वही स्थिति थी। उस समय गोरखपुर के सर्वमान्य साहित्यकार एवं कवि थे रामाधार त्रिपाठी 'जीवन' जो बहुत ओजस्वी कविताएं लिखा करते थे और भावपूर्ण ढंग से गोष्ठियों में सुनाया करते थे। उस समय तक देवरिया जिला नहीं था। वह गोरखपुर का सदरतहसील था। यहां भी साहित्य की गहमागहमी रहा करती थी। देवरिया में हाईस्कूल स्तर के अनेक विद्यालय थे जिसके अध्यापक बहुत योग्य, विद्वान एवं साहित्यप्रेमी थे। स्व पं हर्षधर द्विवेदी, श्री हरिशंकर पाण्डेय,





स्व त्रिगुणानन्द पाण्डेय, स्व चन्द्रकिशोर पति त्रिपाठी, श्री सत्यनारायण शास्त्री, पं पवहारीशरण द्विवेदी जैसे साहित्यिक बन्धुओं का प्रेम और सम्मान मुझे प्राप्त था। बड़े ऊँचे स्तर के कवि सम्मेलन यहां अक्सर आयोजित होते रहते थे जिला परिषद और नागरी प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में।

बरहज में स्व पण्डित छांगुर का प्रभाव उस समय सर्वोपरि था। वे भोजपुरी में कविताएं लिखा करते थे। स्वतंत्रता संग्राम में वे खुलकर भाग लेते थे। बरहज आजादी की लहर में लहराता एक समुद्र जैसा प्रतीत होता था। सन् 1942 के आन्दोलन में गोरी सरकार ने इस पर विशेष कृपा की थी, गोली वर्षा के द्वारा जिसमें दो व्यक्ति शहीद हो गये थे। पं विश्वनाथ त्रिपाठी, सियाराम जी, लंगड़े छेदी, हरगोविन्द जी, बाबू लक्ष्मी नारायण सिंह आदि बाबा राघव दास जी के पीछे पीछे सैनिक की भाँति आन्दोलन में तत्पर रहा करते थे। छांगुर जी का भोजपुरी स्वराज्य आल्हा, राष्ट्रीय गीत, सुदेसिया नाटक जन-जागृति के हेतु अलग समा बांधे हुए थे। सबको सरकार ने जेल में ठूंस दिया था। श्यामलाल जी कुसुम बन्धु को यदि अपने आत्म-कथ्य में याद न करूँ तो सारी की सारी पंक्तियां फीकी पड़ जायेंगी। वे कविता कामिनी के प्रति एक समर्पित आत्मा थे। बेजोड़ कविताएं हिन्दी में लिखा करते थे और भावपूर्ण पाठ में उनका कोई सानी नहीं होता था। ऐसे ही थे पं रामपरीक्षण त्रिपाठी जो ओजस्वी भाषण करने में परम प्रवीण थे। वे कवि थे। उस समय सरगर्मी बरहज में दो ही चीजों में विशेष थी। चीनी के कारखाने तो बन्द हो गये थे। अब सीरे का बाजार गर्म था और साहित्य की लहर में बरहज लहरा रहा था। साहित्य सरगर्मी के केन्द्रीय व्यक्ति थे स्व श्री गजानन्द जी केडिया जो हिन्दी साहित्य परिषद् के प्राण थे। प्रति वर्ष दो बार वे साहित्यिक आयोजन किया करते थे। एक तुलसी जयन्ती के अवसर पर और दूसरा बसन्त पंचमी के। ऐसा कौन सा कवि था जिसको केडिया जी ने बरहज साहित्य परिषद् के मंच से सम्मानित नहीं किया था और वह साहित्यिक विद्वान कौन था जिसने साहित्य परिषद को अपनी वाणी से गौरवान्वित नहीं किया ? देवरिया की संस्था नागरी प्रचारिणी सभा और बरहज का साहित्य परिषद् की धूम मची रहती थी। बम्बई से गांव आकर गाजीपुर, बरहज, देवरिया में मैं रम गया था। बड़ा मगन था। बनारस बम्बई भूल गया था। गांव पर रुकने का एक प्रबल कारण और था मेरी बहिन का विवाह। बातचीत चल रही थी। किन्तु तय नहीं हो पायी थी। जिससे विवाह होना था वह इण्टर का छात्र था। कुलीन परिवार का था। बस्ती जिले का था। अपने चाचा के साथ जो पड़रौना में इण्टर कालेज में अध्यापक थे, वह रहता था। मैं इस सिलसिले में पड़रौना गया। यह तो बता ही चुका हूँ कि मेरे नाम की धूम थी। मैं दर्शनीय बन गया था। लड़के के चाचा से बात हुई। लड़का भी पसन्द आ गया। अगली कारवाई के लिए दूबे जी (लड़के के अभिभावक) के गांव जाकर विवाह की तिथि





तय करनी थी। यहां एक रोचक घटना हुई जिसका जिक्र जरूरी मालूम होता है।

पड़रौना में राजघराना और मारवाड़ी समाज की प्रधानता थी। पड़रौना में मेरे होने का पता मारवाड़ी बन्धुओं को लगा और मुझे उन्होंने आमंत्रित किया कवितादि सुनाने के लिए। खेतान परिवार की बड़ी प्रतिष्ठा थी। राधाकृष्ण खेतान, मातादीन खेतान, दुर्गा खेतान, गौरी खेतान वगैरह का कुटुम्ब आन बान शान से यहां रहता था। दूबे जी को मुझे प्रसन्न रखना था। उनका आग्रह विशेष था कि मैं यह प्रस्ताव स्वीकार कर लूं। अतएव खेतान परिवार में मुझे जाना पड़ा और मैं गया। अच्छी खासी भीड़ थी। हालनुमा बड़ा कमरा भव्य लग रहा था। गौरी खेतान का विवाह कानपुर में ऊंचे पूंजीपति के कुल में हुआ था। मेरी कविताओं से सभी प्रसन्न थे। फिल्मी ग्लेमर अलग से असर डाल रहा था। कुछ फिल्मी गीत सुनाने का भी आग्रह हुआ। मैं कविताएं या गीत गाकर सुनाता था। कण्ठ, शील, शिष्टाचार मधुर था ही। बड़ा मजा आ रहा था गोष्ठी में। आग्रह पर कई फिल्मी गीत सुना डाले मैंने। इनमें वह गीत भी था जिसको मैंने फिल्मस्तान में अशोक कुमार को सुनाकर रिझाया था। ‘वही-काटे न कटे मोर दिनवा, गवनवा कब होई’। इस गीत पर सभी लट्टू हो गये। ऐसी स्थिति में गौरी बाबू ने प्रस्ताव किया कि यह गीत टेलीफोन पर उनकी नव विवाहिता पत्नी को सुना दूँ। मैं तैयार हो गया। कानपुर से टेलीफोन का संबंध जुड़ गया। अब एक ओर टेलीफोन पर बधू और दूसरी ओर टेलीफोन पर कविता गाकर सुनाता हुआ मैं।

वैवाहिक कार्य सम्पन्न हो गया। राशन और कन्ट्रोल का जमाना था। कोई चीज बाजार में नहीं मिलती थी। नमक पर भी पाबन्दी थी। कपड़े भी खुली दुकानों में नहीं मिलते थे। ब्लैक मारकेट का नामोनिशान नहीं था। मुझे अभी तक वर के लिए धोती का जोड़ा खरीदना एक समस्या हो गई थी। परमिट कार्ड प्राप्त करने के लिए कई दिन तक दौड़ना पड़ा। गाजीपुर से मिश्र जी की सहायता से कुछ कपड़े मिले तो गांव के स्टेशन पर पुलिस की नजर बचाकर घर पहुंचा। मिश्र जी ने हमारी बड़ी मदद की थी। रूपये घट गये तो उन्होंने नकद रूपये भी दिये। चावल कहीं नहीं मिलता था। नौगढ़ से बढ़िया चावल कैसे लाया जाय बिना सरकारी आदेश के। गोरखपुर में सम्बन्धित अफसर रहते थे। उनको आर एफ सी कहा जाता था- (रीजनल फूड कन्ट्रोलर)। उनके पास आसानी से कोई पहुंच नहीं पाता था। मेरे एक रिश्तेदार उनके ऑफिस में क्लर्क थे जो अनुशासन की कड़ाई से स्वयं लाचार थे। उनके मित्र थे तारा बाबू। तारा बाबू भी चाहते थे कि चावल का परमिट मुझे मिल जाय। दोनों ने एक युक्ति सोच निकाली। वे साहब के पास गये यह सूचना लेकर कि यहां कार्यालय में एक रिश्तेदार आए हैं जो फिल्मी गीतकार हैं। यहां आए हुए हैं। क्या उनसे आप मिलना पसन्द करेंगे ?





युक्ति काम आ गई। अब मैं साहब की मेज के सामने था। साहब भी नई उमर के छोकरे थे, मुसलमान थे। उन्होंने कार्यालय का काम एक घण्टे के लिए रोक दिया। सभी कर्मचारी एक बड़े हाल में एकत्र हुए और एक घण्टे तक हुआ मेरा कार्यक्रम। सभी कर्मचारी खुश, साहब भी खुश। बार बार हाथ जोड़ते और हाथ मिलाते रहते थे। मेरे हाथ में नौगढ़ से बासमती चावल दो बोरा लाने का परमिट कार्ड स्वतः आ गया था। वैवाहिक कार्य सुसम्पन्न हो गया। सात आठ महीने हो गये थे बम्बई छोड़े। अब बम्बई की याद सताने लगी। फिल्मस्तान लिमिटेड से अपनी गलती की माफी मांगी और पुनः नियुक्ति का आवेदन किया। मुझे बम्बई आकर बात करने का आदेश मिला। मैं बम्बई प्रस्थान की तैयारी में लग गया। आत्मकथ्य की यह यात्रा जिस स्पेशल मेल ट्रेन से हो रही है उसका पड़ाव उतना ही अनिश्चित है जितनी निश्चित है यह यात्रा। यह यात्रा एक ऐसे मुकाम से गुजर रही है जहां कई पेंच हैं, कई मोड़ हैं कई धुमाव हैं। बम्बई और गांव, एक आदि और एक अन्त दो ऐसे विकल्प हैं जिनको न जोड़ा जा सकता है न तोड़ा जा सकता है। ऐसे में एस एल पुरी का यह रिमार्क कि-'सोने की चिड़िया हाथ पर बैठी और आपने उसकी कद्र नहीं की' आत्मकथ्य लिखने के समय तक टीसता रहा है और जीवन भर टीसता रहेगा।

मेरी गलती यही थी कि मैंने बम्बई को घर से जोड़ना चाहा। इस कोशिश में बम्बई हाथ से निकलने लगी। मैंने बम्बई से जुड़ने का अथक प्रयास किया, गीतों का संघर्ष जटिल और विकट हो गया। गांव हाथ से निकलता नजर आने लगा। आत्मकथ्य लिखने की इस घड़ी में हालत यह है कि बम्बई तो हाथ से निकल ही चुकी थी गांव घर भी हाथ से निकल गया। शाम किसी ऐसे मुकाम पर हुई है जहां से न बम्बई नजर आती है और न गांव घर ही दिखाई देता है। अगर मैंने उस 'सोने की चिड़िया' की कद्र की होती तो विकल्पों की दूरी मिट गयी होती। विचार की इस बेला में राजा मेहदी अली खां (फिल्मी गीतकार) की फूहड़ बयानी के लहजे में कही गयी बात दोहरा धाव करती है कि 'मोती भाई तुम रिद्म के राजा हो मगर तुम बदकिस्मत हो। वरना मुझ जैसा अनाड़ी बहैसियत फिल्मी गीतकार ऐश करे ?' यह वही मेहदी बोल रहा था जो स्क्रिप्ट की नकल उतारता रहता था। मेहदी ने जो मुझे 'रिद्म' का राजा कहा तो झूठ नहीं कहा। न उसने व्यंग्य कसा न खुशामद की। बात शत प्रतिशत सही थी। यह इस 'रिद्म' की ही करामात थी और है कि मैंने भी दुनिया देखी। वरना काशी से लाहौर कैसे पहुंचता ? अगर 'खप भार से लदी तूं चली' कविता प्रसाद परिषद् की कवि गोष्ठी में काशी में सुनायी न होती ? रिद्म पर दलसुख एम पंचोली रीझे, मास्टर विनायक राव बम्बई में रीझे, प्रकाश पिक्चर्स में विजय भट्ट रीझे, फिल्मस्तान लि के डाइरेक्टर रायबहादुर चुनीलाल (मदन मोहन-संगीतकार के पिता), अशोक कुमार, मि यस मुखर्जी, किशोर लम्पड़



साहू आदि अनेक मेरे प्रेमी बन गये। पिफल्म 'बैरम खां' के निर्माता मि हवेवाला ने मेरे गीतों को तरन्नुम में सुनकर आह भरकर कहा कि काश ! मैं पहले वाला हवेवाला होता तो आपके इन सारे गीतों को लेकर फिल्म बना डालता। रिद्म के ही कारण सी रामचन्द्र और चितेलकर को झुकना पड़ा तथा फिल्म 'नदिया के पार' में 'मोरे राजा हो लेचल नदिया के पार' गीत को मेरी ही धुन में रेकार्ड करना पड़ा। रवीन्द्र जैन ने 'गजब भइलें रामा' (भोजपुरी फिल्म) में 'ससुरासे नइहर जाइब' गीत को सुनकर पाश्वर गायिका हेमलता से कहा कि गीत सुन लो और जैसे ये गाते हें नोटेशन ले लो। क्या धुन बनाना। धुन तो अपने आप में बनी बनायी है। यह रिद्म कीही करामात है कि 'साजन' फिल्म का मेरा गाड़ी वाला गीत 'सजन घर जाना है' जो स्वीकृत होने के उपरान्त यूं ही रह गया था, लय, आधा मुखड़ा और गाड़ी की ही सिचुयेशन में रूप बदलकर मेला फिल्म में उजागर हुआ। दुनिया में सराहा गया किन्तु परदे की बात कोई नहीं जानता। मेहदी को ही मैं सुना रहा था यह गीत कि 'धीरे धीरे गाड़ी चलाना, सजन घर जाना, न फिर लौट के आना है।' दिलीप कुमार उस समय फिल्म कैण्टीन में मौजूद थे जब मैं मेहदी की टेबुल पर ताल देकर यह गीत सुना रहा था, वे भी सुन रहे थे। दिलीप कुमार फिल्म 'मेला' में हीरो थे। साजन में अशोक कुमार। कैसे क्या हो गया, राम जाने।

यह रिद्म ही कारण बना जब संगीतकार हंसराज बहल रिहर्सल में मुझसे चिढ़ गया। प्रोड्यूसर के आदेश पर पसन्द किया गया गीत-'चोरी चोरी दिल में समाया, सजन मन भाया, मैं जान गयी हो' की लिखित प्रति मैंने म्यूजिक डाइरेक्टर हंसराज बहल को दे दी। उसने गीत पढ़ा और यह कहते हुए लौटा दिया कि इसकी धुन नहीं बन सकती। इसमें तो रिद्म ही नहीं है। मैंने कहा कि मैं तो इसे गाता हूँ। हंसराज बहल ने कहा-'गाकर सुनाओ।' पारो देवी (अभिनेत्री) और कुछ पत्रकार के साथ साथ प्रोड्यूसर महोदय भी उपस्थित थे। मकान के नीचे हालनुमा एक कमरे में जहां यहसब हो रहा था, के ऊपरी तल्ले पर अभिनेता जगदीश सेठी रहते थे जो मौके पर मौजूद नहीं थे। गाकर सुनाने की जिज्ञासा सबने जाहिर की और मैंने सुनाना शुरूकर दिया। शब्द गीतके रिद्म पर थिरकने लगे। साजिन्दों ने लयकारी देखकर अपना साज भी बजाना शुरू कर दिया। माहौल पूरा इस गीत से गरम हो गया। गीत पूरा हुआ तो हंसराज गुस्से से लाल हो गया। मैंने अपनी कापी उठायी औरधीरे से कमरे से बाहर निकल गया। अन्धेरी के अपने कमरे में दुख के मारे दो दिन तक पड़ा रहा। बाद में प्रोड्यूसर महोदय ने आकर दुख प्रकट किया। पारो देवी के आवास पर मुझे और हंसराज बहल को मिलाया गया लस्सी पिलाकर। बात रिद्म की थी। मेरे साथ मेरे रिद्म ने यह फूहड़ मजाक किया था। वह इतना मुँह लगा था। मेहदी अली खां ने मुझे रिद्म का राजा कहा था तो सच ही कहा था क्योंकि लड़ाई के मैदान में लड़ते हुए राजा को क्या चोट नहीं लगती और क्या वह



कभी घायल नहीं होता ? यह रिदम की ही करामात थी कि सौ-डेढ़सौ किलोमीटर की दूरी पर अपने शयन कक्ष में सोयी हुई नव विवाहिता युवती को टेलीफोन पर बुलाकर मुझसे यह गीत सुनवाया गया -‘काटे न कटे मोरा दिनवा, गवनवा कब होई।’

आत्मकथ्य का पड़ाव एक छोटे से मुकाम पर रुक गया था जबकि मैं अपने गांव से बम्बई के लिए रवाना होरहा था और वर्धा होते हुए वहांपहुंचा था। वर्धा में मेरे मित्र भगवान प्रसाद त्रिपाठी ने एक प्रेस कायम कर लिया था। मेरे गांव के ही पट्टीदार के एक स्वजन भगवान के यहां प्रेस में कार्यरत थे। किन्तु मन न लगने के कारण वे भाग्य की आजमाइश में बम्बई पहुंच गये थेखाली हाथ, खाली पेट। बम्बा देवी की कृपा से वे एक आफिस में कलर्की पा गये थे और कहीं रहते थे। उनका नाम था विश्वनाथ उपाध्याय। वे परिश्रम और अध्यवसाय से कालान्तर में एक बड़े आदमी हो गये और बम्बई में जम गये। वे दिवंगत हो चुके हैं। विश्वनाथ को मैंने ही वर्धा भगवान के पास भेजाथा। विश्वनाथ साहित्यिक रुचि के थे। कविता कहानी लिखते थे। बम्बई का एक रोचक चित्र उन्होंने अपनी लम्बी कविता में प्रस्तुत किया था-‘बम्बई बहुत गुलजार शहर है भारत का पेरिस लन्दन’। वक्त आया जब विश्वनाथ बम्बई में मेरे सहायक और आधार बने। मैं सीधे दादर पहुंचा कीर्तिकार बाड़ी, जौनपुर के ठाकुर ध्रुवराज सिंह के यहां। यहीं कुछ दिन रहते हुए मैंने गीतों का अपना मोर्चा संभाला। साथ ही साथ आवास की तलाश में भी था। शिवाजी पार्क के आस-पास बलिया के कुछ युवक जो सूअर के बाल के धन्धे में थे, रहते थे। उन्होंने बड़े प्रेम से मुझे अपने यहां स्थान दिया। कुर्ला का आवास तो हाथ से पहले ही निकल चुका था। कुछ ही महीनों में अन्धेरी पूर्वी में मेन रोड से उत्तर तबेलों की एरिया में नई बनी चालों में एक कमरा मिल गया जिसके लिए पगड़ी नहीं देनी पड़ी। भाड़ा मात्र बीस रुपया माहवार था। शान्तिलाल पूनमचन्द की चाल उसका नाम था। इस बार की यात्रा में यही मेरा स्थायी मुकाम बना। यहीं से ‘साजन’ और ‘नदिया के पार’ के गीत मैंने फिल्मस्तान लिमिटेडके लिए लिखे थे। किन्तु इसके पूर्व बहुत कुछ झेलना पड़ा। बम्बई में अब टिकने के लिए न कोई स्थायी धन्धा था और न कोई नौकरी थी। बलिया वाले मित्रों के साथ एक पत्रकार रहते थे जो नवभारत टाइम्स में सहायक सम्पादक थे। अभी धर्मयुग का प्रकाशन आरम्भ नहीं हुआ था। धर्मवीर भारती इलाहाबाद में थे। बम्बई में भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ अश्क वगैरह रहते थे। पुराने कहानीकार पण्डित सुदर्शन का भी क्याम बम्बई में ही था। मास्टर विनायक राव दिवंगत हो चुके थे और लता मंगेशकर भी अपने स्वरों की आजमाइश में फिल्म क्षेत्र में उत्तर चुकी थीं। उनसे हमारी मुलाकातें प्रायः स्टूडियो में या लोकल ट्रेन में होती रहती थीं। अभी भारत का बंटवारा नहीं हुआ था। उसकी प्रक्रियायें चल रही थीं। लाहौर से लोग भाग कर बम्बई आ रहे।



थे। 15 अगस्त 1947 का जश्न मैंने बम्बई में ही मनाया था। इलाहाबाद क्षेत्रा के एक नेता अंगद सिंह उन दिनों बम्बई में रहते थे। वे कम्युनिस्ट थे। उनसे मेरा परिचय हो चुका था। 15 अगस्त 1947 की रात जब पूरा भारत खुशियां मना रहा था आजादी की, बम्बई भी नशे में झूम रही थी, रक्तपात से 15 अगस्त का अभिषेक हो रहा था, ऐसे में अंगद सिंह कुछ कम्युनिस्ट साथियों को लेकर विरोधी नारे लगा रहे थे और काला झण्डा फहरा रहे थे यह कहते हुए कि ये कांग्रेसी जो आजादी की लहर में बह रहे हैं देश का अहित करेंगे। इनसे सावधान रहो। वगैरह वगैरह।

मैंने अंगद सिंह को ऐसा न करने को कहा कि सदियों बाद भारत गुलामी की जंजीरों से मुक्त हुआ है। आज सबसे बड़ी खुशी का दिन है। आज तो आपको भी खुशी मनानी चाहिए। कल जैसे हो वैसा करें। लेकिन अंगद सिंह ने कहा कि आज के ही दिन उनको चेतावनी भी दे देना चाहिए कि कल वे ही गद्दारी न कर सकें। उग्रसेन सिंह भी उन दिनों बम्बई में ही थे। मिल एरिया में मजदूरों की हड़तालें कराते रहते थे। समाजवादी विचारधारा और मजदूरों का नेतृत्व तथा पूंजीपतियों का विरोध उनका कौल था। उनसे मेरा कोई परिचय नहीं था किन्तु उनका नाम अखबारों की सुर्खियों में रहता था। पंचोली आर्ट पिक्चर्स के कलाकार और मालिक लोग भी लाहौर से भागकर बम्बई आने लगेथे। सर्वप्रथम मैंने फिल्मस्तान में अपनीहाजिरी दी। रायबहादुर चुन्नीलाल फिल्मस्तान के डाइरेक्टर से मैंने भेंट की। मैं पूर्व अनुबन्ध पत्र का नवीनीकरण और कम्पनी में अपनीपुनर्नियुक्ति चाहता था। किन्तु रायबहादुर ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने कहा कि आपको गीत लिखने का मौका दिया जायेगा। किशोर साहू की दूसरी फिल्म साजन में गीत लिखिए। मैं साहू साहब से मिला। उन्होंने खुशी जाहिर की। मिस्टर एस मुखर्जी भी प्रसन्न और सन्तुष्ट थे। अब मैं फिल्म का हमसफर हो गया। फिल्मस्तान के अलावे अन्य कम्पनियों में भी गीत के चान्स हेतु आने जाने लगा।

बाम्बे टाकीज के डाइरेक्टर अमिय चक्रवर्ती का पत्र 'बम्बई आवें तो मिलें' कोरा पड़ा था। मैंने इसे भी आजमा लेना चाहा। लाहौर से चलते समय बी आर चोपड़ा ने एक पत्र बम्बई के अपने एक दोस्त प्रकाश के नाम जो अंग्रेजी पिफल्मी पत्रिका 'शो' के सम्पादक थे दिया था। मैं प्रकाश साहब से भी मिलने का निश्चय किया। प्रकाश जी ने प्रेम से बातचीत की और अमिय चक्रवर्ती से मिलने के लिए मुझे भेजा। चक्रवर्ती साहब ने मुझसे एक-आध गीत सुनना चाहा। मैंने तरन्नुम में शुरू किया-'जिन्दगी का कारवां कहां चला' अभी पंक्ति पूरी भी नहीं हुई थी कि उन्होंने टोक दिया बीच में और कहा-'आप गाकर क्यों सुनाते हैं ?' इसके लिए भिन्न व्यवस्था है। म्यूजिक डाइरेक्टर और प्ले बैक सिंगरों का यह काम है। आपको केवल शब्द रचना करनी है। आप गाकरन सुनाये, केवल गीत के शब्द ही पढ़ें।



यह सुनकर मेरा कुण्ठित होना स्वाभाविक था, मगर मजबूरी थी। अब मैंने रुखे सूखे ढंग से गीत का शब्द पाठ कर दिया। गीत सुन कर चक्रवर्ती साहब ने कहा-जिन्दगी का कारवां और कहां चला, यह सब आप क्या लिख रहे हैं ? जिन्दगी के बारे में एक जमाने से लोग लिखते पढ़ते चले आ रहे हैं। वही धिसी पिटी पुरानी बात आप लिख रहे हैं। कोई नयी बात क्यों नहीं लिखते ? आम जिन्दगी में क्या आपको गीत नहीं दिखाई पड़ते ? मसलन एक मजदूर है। काम से छुट्टी पाकर वह किस आतुरता से घर की ओर चल पड़ता है। बच्चों के लिए कोई सामान खरीद लेता है। घर के लिए साग सब्जी या और कोई जरूरी सामान खरीदता है। घर आता है तो बच्चे कैसे उसके गले लगते हैं। इस प्रकार के जीवन में जो गीत होता है उसे आप लोग क्यों नहीं प्रस्तुत करते। जिन्दगी, मौत, कारवां की फिलासफी को एक जमाने से ढोए चले आरहे हैं। एक ही बात को बारबार दुहराते हैं। चक्रवर्ती साहब का यह लेक्वर सुनकर मुझे तो सांप सूंघ गया। मेरी सारी अक्ल मारी गयी। मैं एक नम्बर का रिद्मबाज। मुझे पहली बार पाला पड़ा था एक गद्यबाज से। मैंने सहमते हुए कहा-‘श्रीमान, आपका कथन सत्य है। जीवन का एक पक्ष यह भी है। किन्तु जीवन अनन्त है और इसकी प्रत्येक अनुभूति नयी कसक, नये आनन्द का बोध कराती है। डाली पर खिला प्रत्येक फल नया होता है। उसका सौन्दर्य अनाविष्ट और अनाद्वाण होता है तभी तो देवताओं को यह अर्पित किया जाता है। फूल में रंग और गन्ध कहां से आता है, यह प्रत्येक सचेतन में जिज्ञासा उत्पन्न करता है। आप जीवन को एक सीमित दायरे में देखते हैं जिसमें विषयानुभूति है, रहस्यानुभूति नहीं है। रहस्यानुभूति से ही गीतों का जन्म होता है। आपकी बात का मैं जवाब नहीं देरहा हूँ। मैं आपके सामने केवल स्पष्टकर रहा हूँ। मैं कोई गायक नहीं किन्तु जैसे चिड़ियों को चहचहाये बिना नहीं रहा जाता वैसे मैं गीत गुनगुनाने से स्वयं को रोक नहीं पाता हूँ।

चक्रवर्ती ने ध्यान से मेरी बातें सुनी और कुछ प्रभावित होते हुए कहा-ठीक ऐसी ही बातें कविन्द्र रविन्द्र ने भी कही हैं। उन्होंने कोई उद्धरण भी बंगला में उद्घृत किया और मुझे एक गीत लिखकर लाने को कहा, आम आदमी की जिन्दगी के बारे में। इस मुलाकात को मैं अच्छा मानता था और दूसरे दिन आम आदमी के जीवन का एक शब्दचित्र खींचकर ग्यारह बजे के लगभग फेमस स्टूडियो में पहुँच गया। चार पांच घण्टे की लगातार प्रतीक्षा से मेरा मूड उखड़ गया था। कमरे में दाखिल हुआ। आदेश किया साहब ने, कुछ लिख के लाये हो तो सुनाओ। मैंने अपना शब्द चित्र पढ़ना शुरू कर दिया। चक्रवर्ती साहब ने सुनकर कहा कि कुछ जमा नहीं। मैंने रुखे स्वर से लेकिन दीन भाव से कहा कि कापफी देर तक बाहर बैठकर इन्तजार करने से मुझमें कुछ शिथिलता आ गई है। शायद इसीलिए ठीक से पढ़ न सका गीत। यह कहना था कि चक्रवर्ती साहब



आपे से बाहर हो गये। ताव से मैं उठा यह कहते हुए कि इससे पहले कि आप कुछ कहें मैं खुदही चला जा रहा हूँ आपके आफिस से और बिजली की तेजी से अपनी सड़क पर आ गया।

दूसरे दिन 'शो' कार्यालय में सम्पादक बी आर चोपड़ा के दोस्त मिस्टर प्रकाशब्द के पास मैं पहुंचा। उन्होंने मुझे बैठने को कहा और सारी बात उनसे सापफ सापफ कह दी। मिस्टर प्रकाश यह सब सुनकर कुछ गम्भीर हो गये। उन्होंने कहा कि जो भी हुआ गलत हुआ। मुझे एक बात बुरी लगी कि आपने चक्रवर्ती साहब को दुखी किया। इससे मेरी इमेज उनके सामने खराब हो गई। मैंने कहा कि मैं इसे किस प्रकार ठीक कर सकता हूँ ? उन्होंने कहा- 'और कुछ नहीं सिर्फ यही बात वे सोचते होंगे कि प्रकाश ने कैसे व्यक्ति को मेरे पास भेज दिया। आप जाकर एक बार फिर उनसे मिल लें और अपनी गलती की माफी मांग लें। मैंने उनसे कहा कि आप टेलीफोन से कह दें ताकि वे तनाव की हालत में न रहें और मुझे पुनः सामने पाकर बौखला न जांय। मिस्टर प्रकाश ने मेरी बात को सही मानकर उन्हें फोन कर दिया और मैं पुनः अमिय चक्रवर्ती से मिलने चल पड़ा।

इस बार पेशी तुरन्त हो गयी। मैंने कहा-मैं अपनी गलतियों के लिए आपसे माफी मांगता हूँ। मैंने आपको अनावश्यक कष्ट पहुंचाया। इसका मुझे बहुत दुख है। चक्रवर्ती साहब ने काफी देर तक फिल्म और फिल्मी कैरियर के सम्बन्ध में लेक्चर दिया जैसे- हम लोगों ने वर्षों तपस्या की। बाघे टाकीज की सीढ़ियों पर झाड़ लगाते थे। बड़ी बड़ी कठिनाइयां झेली। अनेक तरह के छोटे-मोटे काम किए। तब कहीं जाकर कुछ करने का चान्स मिला। आप लोग बड़ी आसानी से ऊँची जगह पहुंचने की शीघ्रता में रहते हैं। आपको अभी बहुत कुछ सीखना है। वगैरह वगैरह। फिल्मस्तान लिमिटेड में फिल्म 'साजन' के लिए लिख रहा था गीत। कमर जलालाबादी और राममूर्ति चतुर्वेदी व नीलकण्ठ तिवारी के गीत भी लिए गये थे इसमें। मेरा एक गीत भी किशोर साहू ने पसन्द किया-

'हम बनजारे संग हमारे

धूम मचा ले दुनिया

अपने पैरों की ठोकर से

राह बना ले दुनिया ।'

सी रामचन्द्र ने धुन बनायी। गीत रेकार्ड हो गया। मुझे इसकी धुन पसन्द नहीं आई। मगर मालिक लोग खुश थे तो मैं भी खुश था। एक दूसरे सिचुयेशन पर मुझे गीत प्रस्तुत करने का आदेश हुआ। एक गाड़ी पर अशोक कुमार और रिहाना बाई बनजारों के कापिफले के साथ हैं। अशोक कुमारगाड़ी हांकते हुए मस्ती में गा रहे हैं। मेरा गीत इस जगह के लिए पसन्द कर लिया गया। गीतके बोल थे-

'धीरे धीरे गाड़ी चलाना



सजन घर जाना
न फिर लौट के आना है।'

मैंने जिस धुन में यह गीत लिखा था वह कमाल की थी। मुझे इसकी अगली कड़ियां पूरी करने का हुक्म हुआ। इस बीच एक घटना और घट गयी। सन्तोषी जी ने अपना प्रोडक्शन 'अरविन्द एण्ड आनन्द' कम्पनी के नाम से कायम कर लिया था। 'खिड़की' नाम से एक फिल्म भी शुरू कर दी थी। मेरे दोस्त एस पी श्रीवास्तव जो किशोर साहू के साथ थे अब सन्तोषी जी के साथ हो गये थे। उन्होंने मुझे सन्तोषी जी से कहकर कम्पनी में सहायक गीतकार के पद पर नियुक्त कर लिया था। मैं 'साजन' के गीत लिख रहा था। वहां रहते हुए मैं यूँ ही कुछ न कुछ लिखता रहता था क्योंकि सन्तोषी जी खुद ही नामी, सफल गीतकार थे। गीतकार की क्या जखरत थी ? किन्तु वे मर्स्टमौला थे, मन में आया और मुझे रख लिया। फिल्म 'शहनाई' की सफलता का यह कमाल था कि फाइनान्सर ने सन्तोषी जी के नाम पर अपने खजाने का मुंह खोल दिया था और सन्तोषी जी दोनों हाथों पैसे उलीच रहे थे। पैसों का छमाका दो-चार हाथ मुझ पर उन्होंने फेंक दिया। तनखाह लेता था सन्तोषी जी की कम्पनी से और गीत लिख रहा था फिल्म 'साजन' के लिए जिसके प्रोड्यूसर डाइरेक्टर थे साहू साहब और कम्पनी थी फिल्मस्तान लिमिटेड। सन्तोषी जी के आफिस में बैठा हुआ अपने मन से एक गजल गीत लिख रहा था। गीत की कड़ी थी-

'हमको तुम्हारा ही आसरा
तुम हमारे हो न हो
लब पै तुम्हारा ही नाम है
तुम हमारे हो न हो।'

इस गीत का तरन्नुम बहुत असरदार था। मैं पहुंच गया गोरेगांव फिल्मस्तान लि. सन्तोषी जी के यहां रहते हुए मेरे आने-जाने पर या कहीं काम करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। जैसे ही मैं फिल्मस्तान के भीतर दाखिल हुआ, कम्पाउण्ड में मि मुखर्जी मिल गये यहां वहां टहलते हुए। मुझे देखा तो उन्होंने पूछ दिया-'क्या मोती, आज कुछ नया लिखा है तुमने ?' मैंने हां कहकर अपनानया गीत उनको सुनाया। यह गीत सुनते ही वे मुझे साथ लेकर किशोर साहू के आफिस में चले आये। मुझे यह गीत सुनाने को कहा। साहू साहब ने इसे पसन्द किया। अब गाड़ी वाले सिचुयेशन पर जो गीत स्वीकृत था उसके बदले यही गीत रख लिया। इसके पहले का गीत कट गया। नयेगीत से दुहरा काम लिया गया। एक बार अकेले अशोक कुमार के लिए और दूसरे सिचुयेशन पर यही गीत डुएट के रूप में अशोक कुमार और रिहाना बाई के लिए। ऐसा करने से उनकी



कहानी में जान पड़ गयी। इस गीत से अब कहानी में संगीत नाटक की स्थिति पैदा हो गई जिसने कहानी की मार्मिकता को गहरी भावपूर्ण अवस्था में बदल दिया। कहानी तो बन गई मगर मेरे एक प्यारे से गीत ‘सजन घर जाना है’ की बलि देकर। मैंने ये ही बातें अपने दोस्तराजा मेहदी अली खां से कहा करता था जो उन दिनों नकवी साहब के निर्देशन में फिल्म ‘एकट्रेस’ के गीत लिख रहे थे। एक दिन फिल्मस्तान की कैंटीन में हम दोनों बैठे हुए थे। गीतों की बातें कर रहे थे। मैं अपनागाड़ी वाला गीत जो कट गया था टेबुल पर ताल देकर ठुमके के साथ सुना रहा था। पास ही दूसरे टेबुल पर दिलीप कुमार, जगताब रेकार्डिस्ट के साथ बैठे हुए थे और यह सब देख-सुन रहे थे। वे फिल्मस्तान में बनने वाली पिफल्म ‘शहीद’ में कामिनी कौशल के साथ नायक की भूमिका में थे। साथ ही ‘मेला’ फिल्म में भी वे नर्गिस के साथ नायक की भूमिका अदा कर रहे थे जिसके संगीतनिर्देशक नौशाद थे और गीत शकील बदायुनी लिख रहे थे। ‘मेला’ में गाड़ी चलाते हुए दिलीपजो गीत गा रहे थे उसके बोल हैं-

गाये जा गीत मिलन के
तूं अपनी लगन के
सजन घर जाना है।

लटका या धुन भी वही थी जो मैं सुनाया करता था। यह गीत दुनिया में मशहूर हुआ। इसी बीच दो चार दिनों के लिए मैं वर्धा गया हुआ था अपने दोस्त भगवान प्रसाद त्रिपाठी के यहां और अनेक कार्यक्रमों में यह गाड़ी वाला अपना गीत भी सुनाया करता था। एक-डेढ़ वर्ष के बाद जब मैं अपने गांव जाकर वर्धा के ही रास्ते बम्बई आ रहा था और वर्धा में रुका था तो मेरे दोस्तों ने मुझे बधाइयां देनी शुरू की मेरे गाड़ी वाले गीत की धूम और सफलता पर। फिल्म 'मेला' वहां प्रदर्शित हो चुकी थी। मेरा माथा ठनका इस गीत का रेकार्ड सुनकर। यह कैसे हो गया ? प्रश्न मेरे दिमाग में आज भी मुझे बेचैन करता रहता है। यह कैसे हो गया ? यह थी मेरे भाग्य की विडम्बना। मेरा भाग्य ही मुझ पर व्यंग्य कस रहा था। लिखो गीत, और लिखोगे! लिखते चलो।

क्या इसी तरह मेरा तराना झूम झूम के लोग गायेंगे ? हाय री किस्मत ! मेरा भाग्य ही जब मेरी हँसी उड़ाने लगे, मेरा कौशल ही जब मुझ पर व्यंग कसने लगे तो गीतों का यह अम्बदा



संघर्ष क्यों छेड़े हुए हूं व्यर्थ। इसी दौर की एक इसी दौर की एक और घटना है। सनरिच प्रोडक्शन द्वारा निर्मित फिल्म 'एक कदम' थी। इसके निर्माता निर्देशक थे रमणीक लाल। प्रोडक्शन सम्भालते थे कान्ति भाई जो बड़े विद्वान थे। वे अंग्रेजी में ही बातचीत करते थे। वे विदेशों से भी धूम आये थे। उन्होंने मुझे दो सिचुयेशन पर गीत लिखने को कहा। एक रोमाण्टिक गीत चलती धुन का और एक मार्चिंग गीत। यह फिल्म सुभाष बाबू (नेता जी) को केन्द्र में रखकर बनायी जाने वाली थी। दमयन्ती साहनी इसकी नायिका थीं, प्रमुख भूमिका में असरानी थे। मार्चिंग गीत था-'दिल्ली चलो, एक कदम, आखिरी कदम'। मैंने दोनों ही गीत दूसरे तीसरे दिन कान्ति भाई को सुना दिया। मेरे दोनों गीत स्वीकृत हो गये। मेरा मार्चिंग गीत सुनकर तो वे इतने प्रसन्न हुए कि सुनते ही बोल उठे- यह है संसार के अच्छे गीतों में से एक।

वाकई मेरा मार्चिंग गीत कमाल का है। यह कहते हुए कुछ संकोच जरूर होता है मगर सब कहने में हानि क्या है शर्म क्या है ? प्रारम्भ की पंक्तियां हैं-

एक और कदम

आखिरी कदम

मंजिल अब कुछ भी दूर नहीं

हम भी इतने मजबूर नहीं

साथियों, उठाओ आज कदम

एक और कदम, आखिरी कदम।

मैंने यह कविता सैकड़ों बार मंचों से सुनाई है और तालियों की गड़गड़ाहट पाई है। किन्तु यह अभागा गीत रेकार्ड तो हो गया। इसका ग्रामोफोन रेकार्ड भी बन गया। किन्तु यह फिल्म पर नहीं आया। समझिए फिल्म ही नहीं बनी क्योंकि इसकी भूमिका अदा करने वाली दमयन्ती साहनी का आकस्मिक निधन हो गया। इन्हीं के नाम पर फिल्म का सौदा हो चुका था किन्तु अब निर्माता बन्धु कहीं के न रहे। वैसे खींच तान कर इसे पूरा किया गया था किन्तु फिल्म एक दिन भी चली नहीं। फिल्म 'एक कदम' पर टूटे इसतूफान काशिकार हो गया 'काटे ना कटे मोर दिनवा गवनवा कब होई' जिस पर अशोक कुमार मुग्ध रहा करते थे, जिसको सुनाया गया विवाहिता मुग्धा युवती को शयनकक्ष से जगाकर टेलीफोन पर डेढ़ सौ किलोमीटर की दूरी से। राजा मेहदी अली खां ने क्या सचनहीं कहा था कि मोती तुम रिद्दम के राजा हो किन्तु बदकिस्मत हो ! इसी 'एक कदम' फिल्म के दौरान गीतकार के रूप में प्रस्तुत अवतार कृष्ण अग्रवाल से मेरा परिचय हुआ। इनके दो गीत फिल्म में थे। मि अग्रवाल मुरादाबाद के रहने वाले थे। ये अच्छे कवि थे। एक अच्छी पत्रिका में मैं



इनका एक अच्छा सा गीत पढ़ चुका था पहले-

मूलधन से व्याज प्यारा
दीप से है दीप्ति प्यारी
मुक्ति से जीवन दुलारा
मूलधन से व्याज प्यारा।

जब तक मैं बम्बई में रहा ये मेरे सुख दुख के साथ रहे। हम लोग प्रायः नित्य ही मिल लिया करते थे। बम्बई में वे जम गये हैं। पैसे वाले हो गये हैं। फिल्म 'साजन' पूरी हो चुकी थी। मेरे तीन गीत इस फिल्म में थे। मैं नया नया गीतकार था इसलिए फिल्मस्तान में न तो मेरी ओर किसी का ध्यान था और न मेरे गीतों की कोई चर्चा थी। कभी राममूर्ति चतुर्वेदी के गीत-'सम्हल सम्हल के जइयो रे बनजारे दिल्ली दूर है' थी तो कभी कमर जलालाबादी के गीत-'ठण्डी ठण्डी रेत में खजूर के तले' की तारीफ होती रहती थी। मैं कान रोपे इधर उधर फिल्मस्तान में घूमता रहता कि मेरी कोई चर्चा करता है या नहीं। पहले सप्ताह तक तो यही हालत रही किन्तु दूसरे सप्ताह मैंने एस एल पुरी साहब को मि प्रैरा से सांय सांय की आवाज में कह कहते हुए सुना कि यार, 'तुम हमारे हो न हो' गाना बड़ा गरम गरम जा रहा है और इस गाने की गरमी पूरे देश में यहां तक कि विदेश में व्याप्त हो गई है।' कई दशक तक यह गरमी ऐसी ही बनी रही और मुझे 'तुम हमारे हो न हो' गीत लिखने की शाबासियां चारों ओर से मिलने लगीं।

फिल्मी दुनिया में मेरी पहचान कायम होने लगी। इस गीत को एकल में मुहम्मद रफी ने और युगल गीत में रफी के साथ ललिता देवलकर ने गाया था। सन्तोषी जी के कार्यालय में मुहम्मद रफी से हमारी पहली मुलाकात हुई थी। लता मंगेशकर को प्ले बैक के चान्स मिलने लग गये थे और वह धीरे धीरे प्रगति की दिशा में बढ़ने लगी थीं। गीतादत्त उस समय गीता थीं और अपने वृद्ध पिता के साथ प्ले बैक देने के लिए फिल्मस्तान में आती रहती थीं। पांच छः महीने के बाद सन्तोषीजी के कार्यालय से मेरी छुट्टी हो गई। पैसों के मामले में यद्यपि मेरी हालत डांवाडोल थी लेकिन बम्बई का मेरा खर्च निकल जाया करता था और घर पर भी कुछ न कुछ भेजता रहता था। अपने पूर्व परिचित मित्र जवाहर लाल शर्मा के आवास पर ग्राण्ट रोड प्रायः जाता था। अब वे अपनीपत्नी के साथ उसी फ्लैट में रहने लगे थे जिसमें कभी मास्टर विनायक राव अपने कुनबे के साथ रहा करते थे। जवाहर लाल शर्मा सनराइज पिक्चर्स में ही प्रोडक्शन का प्रबन्ध कार्यसम्हालते थे। बी एम व्यास इसके मालिक थे। इनकी किसी फिल्म में मैंने एक-दो गीत दिए थे। बी एम व्यास दोकरिहा और कंजूस निर्माता थे। पैसे उन्होंने फिल्म से बहुत कमाये थे और बम्बई में अनेक मकान उन्होंने खरीद लिया।



रखे थे जिनसे बहुत भाड़ा मिला करता था उन्हें। किन्तु खुद वे एक किराये के मकान में खस्ता हाल जिन्दगी गुजारते थे। बहुत बाद में पता चला कि वे इनकम टैक्स के बतौर दिवालिए हो गये थे और बहुत दयनीय दशा में किसी अस्पताल में उनकी मृत्यु हो गयी।

मैं बम्बई में अपने भाग्य की आजमाइश कर रहा था। अन्धेरी में शान्तिलाल पूनम चन्द की चाल में एक कोठरी भाड़े पर लेकर रहता था। जहां औरों के अलावे अवतार और विश्वनाथ प्रायः आते रहते थे। आल इण्डिया रेडियो बम्बई से भी सम्पर्क सूत्र जुड़ चुका था। प्रायः मेरे कार्यक्रम प्रसारित होते रहते थे। सरदार बल्लभ भाई पटेल की मृत्यु के समय मैं बम्बई में था। बापू को गोली लगी थी तब भी मैं बम्बई में था। श्रद्धांजलि कविता गोष्ठी आकाशवाणी बम्बई से जो प्रसारित हुई थी उसमें मैंने भी कविता पाठ किया था। गीतकार भरत व्यास, नीलकण्ठ तिवारी और सरसरस्वती कुमार दीपक के साथ इस कार्यक्रम में सम्मिलित हुए थे। श्री कृष्णचन्द शर्मा भिक्खु से मेरा परिचय सामान्य रीति से हो गया था। ये एक तेजस्वी युवक थे। बिड़ला के किसी कन्सर्न में कार्यरत थे। बहुत सुकुमार बहुत कोमल किन्तु बहुत गम्भीर विचारक और विलक्षण थे। शरीर से कमनीय थे। गौर वर्ण के रूपवान थे। इनसे मेरी मैत्री गाढ़ी हो गयी।

इन गीतकारों की संगति में मैंने एक सांस्कृतिक संस्था 'भारतीय कला केन्द्र' नाम से अपने कमरे में कायम की थी। सप्ताह में एक बार इसकी बैठक हुआ करती थी। कला की वन्दना के रूप में मैंने एक कविता लिखी थी जिसको कार्यक्रम के आरम्भ में हम सब एक साथ गाते थे। प्रथम पंक्तियां इस प्रकार थीं-

आवो चलें आज
कला की उतारें आरती
चमक उठे दिशा दिशा
गूंज उठे भारती।
कविता के छन्द छन्द
सप्तक स्वर मन्द्र मन्द्र
वंशी के रन्ध रन्ध
पायल की छूम छनन
विश्व को पुकारती।
आवो चलें आज
कला की उतारें आरती।





साप्ताहिक कार्यक्रमों का विवरण दैनिक विश्वमित्र और नवभारत टाइम्स में छपता रहता था। बाबा राघवदास को इन्हीं अखबारों के माध्यम से मेरे इस कार्य का पता चला और उन्होंने मुझे अपनी तरफ ऐसी संस्थायें कायम करने की प्रेरणा दी। कुछ दिनों बाद जब मैं गांव गया तो बाबाजी से बरहज आश्रम में भेट की और बरहज, भाटपार तथा कुछ अन्य स्थानों में 'भारतीय कला केन्द्र' की शाखायें कायम की। लोगों का प्रेम और विश्वास मुझे प्राप्त था और वे इस कार्य में मेरी सहायता तन मन धन से करते थे। किन्तु मेरे जीवन का उद्देश्य ही जब निश्चित नहीं था तो मेरे इस प्रकार के प्रयत्नों की सार्थकता ही कितनी थी ? गांव आया तो बम्बई की स्थापित संस्था टूट गयी और बम्बई गया तो इधर की सभी शाखा संस्थायें टूट गयीं। फिल्मी दुनिया में गीतों का मेरा संघर्ष टूटटूट चलता रहता था या यूं कहिए दम लेकर दौड़ता रहता था।

काव्य रचना का मेरा मोर्चा कमजोर नहीं था। 'मधुतृष्णा' 'कवि और कविता' के बाद इन दिनों मैं 'समिधा' के प्रणयन में लीन था। मेरे अन्तर्मन में गीतों का दर्द जाहिर होने के लिए रास्ता ढूँढ रहा था। 'मधुतृष्णा' में यह दर्द पूर्ण रूप से जवान हो चला था और 'कवि और कविता' में यह निर्णायक स्थिति में पहुंचने के हेतु जूझ रहा था। फैसले की मिसिल तैयार हो चुकी थी-

बस तेरा एक सहारा है
कविता में कोयल सी कूको
जब तक अनहद में नाद रहे
तब तक चूमो नभ को चूमो
कविता का मधुमय रूप मुझे
जीवन में सबसे व्यारा है
कविता में बहते आंसू की धारा
बस तेरा एक सहारा है।

कविता का यह सहारा मुझे बम्बई में मिला। रोमानी काव्य धारा अपनी परिणति पर पहुंच गयी जैसी लग रही थी। इसका समापन यज्ञ होना बाकी था। इसकी भूमिका स्वरूप समिधायें स्वतः एकत्रित होने लगी थीं। समिधा के छन्द सांसों में गूंजने लगे थे। गीतों का यह संघर्ष निराला था। अन्तर्मन में जो गीतों का धुंआ व्याप्त था वह पिफल्मी जगत में मेरे मन के बाहर की दुनिया में आंधी तूफान बनकर उमड़ चला था। एक साधारण सा उदाहरण है- मैं 'साजन' फिल्म के बाद गीत लिखने के चान्स हेतु मि एस मुखर्जी साहब से मिलना चाहता था। मैं जीने के नीचे एक कुर्सी पर बैठा समय के इन्तजार में गीतों का दर्द गुनगुना रहा था कि देखा मि प्रान(अभिनेता) जो लाहौर से विभाजन





के कारण बम्बई आ चुके हैं सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे मुखर्जी साहब से मिलने के लिए। मैंनेउन्हें देखा उन्होंने मुझे। पंचोली आर्ट पिक्चर्स की याद आई। चमनउजड़ चुका था। सभी बुलबुलनीड़ की तलाश में आसमान में पर मार रहे थे। ओमप्रकाश कामेडियन भी मिले थे। बी आर चोपड़ा और शादीलाल से भी भेंट हो चुकी थी। रविन्द्र दवे बम्बई में फिल्म निर्माणकी धुन में थे। दलसुख एम पंचोली हैगिंग गार्डेन के किसी विश्रामालय में थे। मैं उनसे जाकर वहाँ मिल आया था। वे लान में जयन्त देसाई के साथ ड्रिंक की चुस्की ले रहे थे। सभी दृश्य आंखों के आगे नाचने लगे थे। क्या से क्या हो गया। चमन जल रहे हैं, परिन्दे भाग रहे हैं। इन्हीं परिन्दों में से एक प्रान सीढ़ियां चढ़ते मुझे मिला तो मुझे अपनी सुधि आई कि मैं एक अरसे से लाहौर छोड़कर बम्बई की खाक छान रहा हूँ। यही था बाहर का औंधी पानी तूफान और भीतर अन्तर्मन में कविता की घास। मैं भीतर और बाहर दोनों के घोर संघर्षों में था। प्रतीक्षा में बैठा हुआ गीत का दर्द जो गुनगुना रहा था, कुछ इस प्रकार था-

गीत जीवन का सहारा
स्वप्न का पंछी सलोना
वेदना के पंख खोले
चंचु में तिनका लिए
सुख का विजन बन बीच डोले
पंख में है शक्ति जितनी
उड़ रहा उतना बेचारा
गीत जीवन का सहारा।

भीतर भी मन में सहारा गीत ही था कि 'बस तेरा एक सहारा है' और बाहर भी सहारा गीत ही था-गीत जीवन का सहारा ! ऐसी हालत में 'समिधा' समापन समारोह के निमित्त उपकरण जुटा रहा था। राह चलते पैदल या लोकल ट्रेन से, उठते बैठते, सोते जागते, यदि तुम न बसो इस मन में का मन्त्र जाप करता था। गीत ही तो मुझे उड़ाए लिए चले जा रहे थे। वरना मैं काशी से लाहौर और लाहौर से बम्बई क्यों आता ? गोताखोर बम्बई के समुद्र में गोता लगाकर मोती ढूँढ रहे थे जबकि मोती उनके मन प्राण में बसा हुआ था। इस कारुणिक प्रसंग का समाधान बहुत बाद सन् 1957—58 में बरहज श्रीकृष्ण इण्टर कालेज के मेरे अध्यापक जीवन में एक भोजपुरी कविता 'मृग कस्तूरी' ने किया इस प्रकार-

संपवा के मणी मिलल
हथिया के मोती
तोहके कस्तूरी मीलल





दियना के जोती
 अपने में आपन रतनवा हेराना
 चारो ओरिया खोजि अइल
 पवल न ठेकाना।
 दउरे ल अनेर तू
 पहुंचला में देर बा
 बूझि ल बचन ई
 समुझला के फेर बा।
 होख तूं सचेत पहिले
 होखिह दीवाना
 चारो ओरियां खोजि अइब
 पइब ना ठेकाना।

आत्मकथ्य लिखने की इस बेला में मेरे जीवन में गीतों का संघर्ष अब पूर्णरूपेण समाप्त हो चुका है। गीत अपनी पहुंच पा गये हैं और अब आराम कर रहे हैं। वैसे तो दुनिया है, खुद दौड़ाती रहती है। ‘मन तड़पत हरि दर्शन को आज।’ अब लौट चलूं उसी जीने के नीचे जहां बैठा मिमुखर्जी से मिलने की प्रतीक्षा कर रहा था। साहू साहब की दूसरी फिल्म भी फिल्मस्तान में सफल हो गयी थी। इस सफलता में मेरा भी हार्दिक सहयोग और गाड़ी वाले गीत का बलिदान था। मि मुखर्जी ने बड़े प्रेम से मुझसे बातें की और साहू साहब की तीसरी फिल्म ‘नदिया के पार’ में गीत लिखने का मुझे चान्स दिया। साहू साहब भी प्रसन्न थे मुझसे। उन्होंने कहा था गीत लिखने के आरम्भ में कि अबकी बार मैं गीतों में मोती की कमर तोड़ूंगा यानि की सारे के सारे गीत इन्हीं से लिखवाऊंगा। अब मैं साहू साहब की छांह में ‘नदिया के पार’ के गीत लिखने लगा। भीतर कविता बाहर फिल्मी गीत, यही थी धुन इन दिनों मन की। ‘समिधा’ सांसों में लिखी जा रही थी। फुरसत पाने पर ‘राशन की दूकान’ और स्वाद बदलने के लिए लम्बी बहर की एक उर्दू वज्म ‘एक शायर था दुनिया में आया’ बाकी सारा समय और चिन्ताएं नदिया के पार के गीतों में लगी थी। यह वक्त बहुत जुझारू हो गया था मेरे लिए। एक और फिल्म कश्मीर फिल्म्स की चौबे जी या हिप हिप हुर्झे में भी मुझे गीत लिखने को आमंत्रित किया गया था। दो गीत स्वीकृत हो चुके थे। तीसरा लिख रहा था। इस फिल्म की टीम को मैंने सुना दिया था ‘नदिया के पार’ के वास्ते सुरक्षित दो गीत। १. दिल ले के भागा दगा दे के भागा और २. मोरे राजा हो, ले चल नदिया के पार। इन्हें बहुत पसन्द किया गया और



वे अपनी फिल्म के लिए देने को मुझसे कहने लगे। मैं इस प्रस्ताव से कतरा गया। सोचा कि फिल्मस्तान में ही इन्हें देना ठीक रहेगा। क्या पता इनकी फिल्म बने न बने, चले न चले। अगर फिल्मस्तान वाले इसे स्वीकार कर लेंगे तो यह गीत लोकप्रिय हो सकेगा। मैंने इस टीम को स्वतः छोड़ दिया। इस फिल्म के गीत गोपाल सिंह नेपाली ने लिखे। मेरे दोनों गीत अभी क्वारे थे। इनका सौदा नहीं हुआ था। साहू साहब ने कभी सुना नहीं था। सिचुयेशन अभी पक्की नहीं हो पाई थी। फिल्म का नामकरण भी नहीं हुआ था। लेकिन 'नदिया के पार' फिल्म मैं अपनी पहचान और सहूलियत के लिए करूँगा। फिलहाल इसका एक गीत साहू साहब और मि मुखर्जी को बहुत पसन्द आया था। यह ठेठ भोजपुरी में था। गीत की स्थायी पंक्ति थी-

कठवा के नइया बनइहे रे मलहवा
नदिया के पार दे उतार
छपक छपक चले तोरी नइया रे मलहवा
आई पुरुवाई के बहारा।

मैं इस गीत को कुछ इस ढंग से सुनाता था कि मुखर्जी साहब मोह जाते थे, साहू साहब रीझ जाते थे। मि मुखर्जी बंगाली थे वे कठवा का उच्चारण नहीं कर पाते थे। वे कठवा कहते थे। सिचुयेशन के मुताबिक अन्तरा की पंक्तियां मुझे बोलनी पड़ीं। मिली जुली हिन्दी, भोजपुरी, बेस पर बहुत भली लगती थी। सी रामचन्द्र इसके संगीत निर्देशक थे। उन्होंने इसकी धुन चालू बना दी और जो मेलोडी मैंने तैयार की थी वह खत्म हो गयी। फिर भी गीत सिचुयेशन पर जमता था औरस्थायी पंक्ति पूरी हावी थी। माहौल पर कोरस के इस गीत में मदन मोहन, एस एल पुरी ने भी चितेलकर के साथ प्ले बैक दिया था। यही मदन मोहन बाद में सुप्रसिद्ध संगीत निर्देशक के रूप में विख्यात हुआ। इस फिल्म को भोजपुरी फिल्म भी कहा जाता है। इसका कारण न तो स्टोरी है न संवाद। संवाद हिन्दी और छत्तीसगढ़ी में हैं। छत्तीसगढ़ी भोजपुरी के नजदीक है। मल्लाहों के जीवन को प्रस्तुत किया गया है इस फिल्म में। उनके लिए देहाती बोली होनी चाहिए। चूंकि साहू साहब की बोली छत्तीसगढ़ी थी तो संवाद छत्तीसगढ़ी और हिन्दी में आये। मेरी मातृभाषा भोजपुरी है तो गीत पूरी भोजपुरी संस्कृति के साथ मिश्रित भोजपुरी में लिखे गये। गीत पूरे फिल्म पर हावी हो गये तो भोजपुरी ही एक तरह से हावी हो गई और यह फिल्म भोजपुरी भी कही जाने लगी। इसका कारण पृष्ठभूमि में मेरा होना है। इस फिल्म में कुल आठ गीत थे जिनमें तीन सरलता से स्वीकार कर लिए गये।

१. कठवा के नइया २. नजरिया में अइहो ३. दिल ले के भागा । किशोर साहू हमेशा कुछ खोजते और कुछ सोचते रहते थे। प्रायः वे उलझे उलझे दीखते थे। वे घपले का



फैसला नहीं करते थे। अच्छी बात और नयी सूझ का वे सम्मान करते थे। उनके पास बैठा हुआ मैं अक्सर कोई नई कविता, गीत या गजल उन्हें सुना दिया करता था। मैंने एक दिन उनके सामने सवाल जवाब के तर्ज में एक गजल की अद्वाली उन्हें सुनाई तो उन्होंने कहा-इसे पूरा कर डालो। लेहाजा एक कौव्वाली प्रस्तुत हो गई जिसका उपयोग साहू साहब ने खूबसूरत तरीके से किया है। यह कौव्वाली फिल्म संसार में बहुत सराही गयी।

नन्हीं सी जान में है
जवानी का सितम क्यों ?
रग रग में नशा और
नशे में है दर्द क्यों ?
यह इसलिए कि
जिन्दगी से प्यार किया जाय
दो चार दिन ये
प्यार से गुजार दिया जाय।

मुहम्मद रफी और शमशाद बेगम ने इसे गाया है। डेविड, माया बनर्जी और रमेश गुप्त ने इसकी अदायगी की है। एक गीत ऐसा था जिसके बोल थे-

सोने की मछरिया ले के
चली है बजरिया
हो सांवरिया मोरे
निरखूं डगरिया मैं तोहार।

भोजपुरी मिश्रित हिन्दी में यह पूरबी गीत था जिसकी अपनी मस्तानी धुन थी। नायिका नायक को इशारे से बाजार में आमंत्रित करती है। सी रामचन्द्र ने इसकी धुन ऐसी बना दी कि पूरबी की सारी मस्ती खत्म हो गयी। गीत की पंक्तियां टूट टूट कर एक संकीर्ण स्थल पर खत्म हो जाती थीं। शोकगीत जैसा यह लगने लगा। किशोर साहू ने कहा कि तूने तो सैड सांग इसे बना दिया चितेलकर। मैं तत्काल बोल उठा कि इस तर्ज पर एक सैड सांग लिख दे रहा हूँ और मस्ती वाला दूसरा गीत कल लिख दूँगा। इस तरह ‘बजरिया में अझो’ गीत बना और जो सैड सांग की धुन थी इस पर मैंने जो गीत लिखा उसने फिल्म में समा बांध दिया। भोजपुरी की मिठास का पता फिल्मी दुनिया को पहली बार चला। यथा-

अंखिया मिला के अंखिया
रोवे दिन रतिया





न भूले बतिया
भूले ना सुरतिया हो तोहार।

चितेलकर साहब ने मन से इस पर काम किया क्योंकि मैंने उनकी अस्वीकृत तर्ज को आदर्श तर्ज के रूप में प्रस्तुत होने का अवसर दिया। इसके लिए चितेलकर साहब को चाहिए था मुझे आगेप्रोत्साहित करें किन्तु ऐसा उन्होंने नहीं किया। इस बीच बनारस के यशस्वी फ़िल्म कलाकार एस एन त्रिपाठी और सीवान (बिहार) के चित्रगुप्त से भी मिलता रहता था और दोनोंने मुझे बहुत सहारा दिया गाढ़े दिनों में। त्रिपाठी जी और चित्रगुप्त ही होमी वाडिया के धार्मिक फ़िल्मों में कहानी, अभिनय, संगीत तथा निर्देशन तक का भार वहन करते थे। त्रिपाठी जी का फ़िल्म जगत में अपना एक विशिष्ट स्थान था। अभी चित्रगुप्त जी नये थे। त्रिपाठी जी ने उनको अपनासहयोगी बना लिया था। चित्रगुप्त त्रिपाठी जी के सम्पर्क से आगे बढ़ते जा रहे थे। दोनों की संगति और सहमति सराहनीय थी। दोतीन धार्मिक फ़िल्मों में मेरे गीत भी इन्होंने लिए थे। सुरेखा हरण में मेरा एक गीत बहुत सराहा गया था और लोकप्रिय हुआ था -

कहां चली ओ वृज की बाला
सर पर लिए गगरिया
छेड़ करो ना ओ नन्दलाला
छोड़ो मोरी डगरिया।

चित्रगुप्त जी के पास मैं अक्सर जाता था और फ़िल्मस्तान में अपने गीतों के बारे में उनसे सलाह लिया करता था। ‘कठवा के नइया’ की चर्चा मैंने उनसे की थी। चित्रगुप्त जी का भोजपुरी गीतों से अभी कोई सम्बन्ध नहीं था। भोजपुरी के सम्बन्ध में मैं सनराइज पिक्चर्स के श्री जवाहर लाल शर्मा जो मेरे अनन्य मित्र थे से चर्चा किया करता था। वे भी एक पिक्चर बनाने के फेर में थे। बहुत संघर्ष और उठा पटक के बाद उनकी एक पिक्चर ‘ममता’ नाम से बनी जिसमें उन्होंने मेरा एक बड़ा प्यारा सा साहित्यिक गीत लिया था जिसको मुकेश ने गाया था- ‘भोर भयी, एक परी गगन से उतरी’। शर्मा जी भोजपुरी में फ़िल्म बनाने की बात करते थे और ‘विदेशिया’ नाम से पटकथा भी तैयार कर ली थी जिसके लिए वे राममूर्ति चतुर्वेदी से सम्पर्क साधे हुए थे। वक्त आया कि यह सब कुछगड़बड़ा गया और क्या होना था क्या हो गया ? परदे के पीछे की घटना को कोई नहीं जानता, न जानेगा। फ़िल्म ‘नदिया के पार’ में मेरे दो गीत लिए गये जो नृत्य गीत थे। एक था ‘मारि गयो रे मेरे दिलपे कटारी’ जिसको शमशाद बेगम और चितेलकर ने गाया था। दूसरा था ‘ओ गोरी ओ छोरी कहां चली हो’ जिसको चितेलकर और लता मंगेशकर ने गाया था। लता मंगेशकर ने मेरा गीत पहले पहल और आखिरी बार गाया। मेरे जीवन में पुनः ऐसा कोई अवसर आया ही नहीं कि वे मेरा





गीत गातीं। 'फिल्म नदिया के पार' में मेरे सात गीत हो चुके थे। एक गीत बाकी था युगल गाना नायक और नायिका का। इस कहानी का जीवन्त गीत यही था जिस पर साहू साहब का विशेष ध्यान था। मैं भी इसके लिए बहुत चिन्तित था किन्तु मजबूरी थी।

मजबूरी यह थी कि मेरा पूर्व लिखित 'मोरे राजा हो' इसी सिचुयेशन पर फिट बैठता था किन्तु सी रामचन्द्र संगीत निर्देशक को यह पसंद नहीं था और मुझसे बार बार नये नये गीत लिख वाया जाता था और अस्वीकार हो जाता था। सात गीत इस स्थल के लिए अस्वीकृत हुए। मैं ऊब गया। इस स्थिति में मैंने चित्रगुप्त जी से जो बिहार के ही रहने वाले थे यह बात बतलायी कि 'मोरे राजा हो' के बारे में चितेलकर साहब कहते हैं कि इसकी धुन नहीं बन सकती। चित्रगुप्त ने कहा कि हाँ, यदि बनी तो फ्लैट चली जायेगी, डल हो जाएगी। मैं मन ही मन सोचता था कि महेन्द्र मिसिर और भिखारी ठाकुर ने जिन तजों से भोजपुरी में धूम मचा दी और प्रत्येक जबान पर पर इसको ध्वन्यांकित कर दिया क्या वह फ्लैट चली जायेगी ? और कहे तो कोई बात नहीं, भोजपुरिहा हो के चित्रगुप्त जी भी क्या यही सोचते हैं ? कश्मीर फिल्म्स के राधाकिशन जी यह गीत मांग रहे थे। मैंने नहीं दिया कि फिल्मस्तान में इसे दूँगा और फिल्मस्तान में इसकी यह दुर्गति ? अन्त में सी रामचन्द्र ने मुझे एक धुन दी-

ड ड डा डा ड ड डा

डा ड ड डा

डा डा

डा ड ड डा डा

और इसी पर गीत लिखकर लाने को कहा। मैंने इस पर गीत लिखा जो इस प्रकार था-

नदिया पार चलें

मोरे राजा

आ जा

आंखों में समा जा।

चितेलकर साहब को मैंने यह गीत सुना दिया और इन्होंने इसे पसन्द कर लिया। साहू साहब के आफिस हम और मि चितेलकर गये तो साहू साहब ने पूछा-'क्यों चितेलकर ! गीत तैयार हो गया ? चितेलकर साहब ने कहा-जी साहब। फिर कहागया कि सुनाओ। और चितेलकर साहब ने हारमोनियम पर यह गीत तर्ज में सुना दी। आफिस में मि मुखर्जी और सन्तोषी जी भी उस समय विराजमान थे। तर्ज सुनकर कोई भी प्रसन्न नहीं हुआ। साहू साहब ने कहा 'यह कैसी तर्ज ? यह





तो बहुत ही डल है।' मैं सोचता था कि मेरी मुक्ति हो जायेगी इसी गीत से किन्तु यह क्या ? मुझे फिर घिसटना पड़ेगा अन्यथा और कोई बाजी मार ले जायेगा। साहू साहब ने जब अपनी सहमति प्रकट की उसी समय बड़ी नम्रता के साथ मैंने एक प्रस्ताव रख दिया कि क्या हर्ज है यदि चितेलकर साहब 'मेरे राजा हो' को बाजे पर सुना दें। सबने कहा- 'हाँ चितेलकर सुनाओ।' चितेलकर साहब को मजबूर होकर यह धुन सुनानी पड़ी। उन्होंने मुझसे खींजते हुए गाकर सुनाने को कहा और मैंने सुनाया यह गीत गाकर। धन्य है 'भिखारी ठाकुर', धन्य हैं 'महेन्द्र मिसिर' और धन्य है 'रहरी में बोलेला हुंडार' सबने भंवरजाल में झूबती मेरी नाव को चमत्कारिक ढंग से बाहर निकाला। गीत सुनकर सबके चेहरे खिल गए। सभी मस्त हो गए। साहू साहब ने कहा कि चितेलकर ! यही गीत जाएगा। बन सके तुमसे तो धुन बनाओ वरना धुनभी यही जायेगी। फैसला हो गया। चितेलकर साहब कटकर रह गए उन्होंने मुझसे म्युजिक रूम में चलने को कहा। उनके साथ ही मैं गया रूम में। वहाँ चितेलकर साहब ने मुझसे गवा कर गीत की स्वर लिपि अंकित की। मेरी छुट्टी हो गयी।

मुझे पता नहीं चला कब गीत की रिहर्सल हुई, कब प्ले बैक का आभ्यास हुआ ? किसने प्ले बैक दिया ? यह गीत रेकार्ड किया गया भी या नहीं ? कहीं कैसिल तो नहीं हो गया ? किसी से चुपके चुपके पुनः गीत लिखवाया तो नहीं जा रहा है ? हे राम ! क्या होगा अब ? किसी से कुछ पूछने या पता लगाने लायक बात भी नहीं है। इससे हमारी कमजोरी जाहिर होगी। गीत लेखन का मेरा काम तो पूरा हो चुका था। मैं स्टूडियो आकर, धूम-धाम कर, जायजा लेता रहता था। एक हफ्ता बाद एक दिन जब मैं स्टूडियो पहुंचा तो देखता हूं कि मिनी थियेटर हाल के फाटक बन्द हैं और बाहर तीन चार स्टाफ के कर्मचारी जैसे-रमेश गुप्त, सुशील साहू, जगताब कोई सहायक कैमरामैन खड़े हैं और थियेटर के भीतर से 'मेरे राजा हो' की संगीतबद्ध ध्वनि आ रही थी उसी प्रकार जैसे मैंने गाया था। पुरुष स्वर के लिए मुहम्मद रफी की आवाज स्त्री, स्वर के लिए ललिता देवलकर की आवाज में यह गीत हूबहू मेरी अपनी ही तर्ज में सुनाई पड़ रहा था। यानि कि मेरा गीत 'मेरे राजा हो' की रिकार्डिंग हो गयी है, यह मुझे मालूम हुआ। मैंने सन्तोष की एक सांस ली। किन्तु जो कर्मचारी बाहर खड़े सुन रहे थे वे इस गीत की खिल्ली उड़ा रहे थे। हास्य-व्यंग के भाव में कहते थे कि इस गीत के इण्टरवल म्युजिक से तो लगता है कामिनी कौशल के नहीं रीछ और बन्दर के क्लोजअप दिखाये जायेंगे। मतलब कि ये बातें मेरे दिल को तोड़ने वाली थीं। गीत की रेकार्डिंग के बाद भी मैं खुश नहीं था। गीत अभी चल ही रहा था। थोड़ी दूर पर मैंने एक बिहारी मजदूर को देखा जो अपने सिर पर लकड़ी के पटरे लेकर एक स्टूडियो से दूसरे स्टूडियो में जा रहा था। उसके कान में यह तर्ज पड़ी वह जहाँ का जहाँ खड़ा हो गया। उसका अपना गांव घर



अपने बाल बच्चे अपने पोखरा, बाग-बगीचे याद आ गये होंगे। वह तब तक सुनता रहा जब तक यह पूरा न हुआ। गीत खत्म होने पर भारी मन से धीरे धीरे वह स्टूडियो की तरफ लगा। उसके सर का बोझ और भारी हो गया होगा। मैंने मन ही मन कर्मचारियों से कहा- कह लो तुम लोग चाहे जो यह गीत तो हिट होकर ही रहेगा। सन् 1947—48 के बीच लगभग एक वर्ष के अन्तराल में मेरे गीतों के संघर्ष का यह संक्षिप्त विवरण है। ‘भारतीय कला केन्द्र’ की साप्ताहिक बैठकें नियमित अनियमित ढंग से होती रहती थीं मेरी साहित्यिक कृति ‘समिधा’ लगभग पूरी हो चुकी थी। ‘एक शायर’ और ‘राशन की दूकान’ भी पूरी हो चुकी थी। गीतधारा से हटकर अन्य प्रकार के फुटकर गीत भी लिखता ही रहता था। मेरे गांव के मेरे पट्टीदार विश्वनाथ उपाध्याय ने जोगेश्वरी में एक चाल में कमरा लिया था अन्धेरी के मेरे निवास के ठीक सामने उनसे हमेशा भेंट मुलाकात होती रहती थी। अवतार कृष्ण अग्रवाल और उनके सहयोगी मित्र मुरादाबाद के बर्तन वाले दुकानदार भी प्रायः हमेशा मिलते थे। वे स्टैण्ट पिक्चरों में कुछ करते धरते रहते थे। श्रीकृष्ण चन्द्र शर्मा भिक्खु और उनके सहयोगियों से भारतीय कला केन्द्र में गोष्ठी का कार्यक्रम चलता था। चित्रगुप्त और एस. एन. त्रिपाठी के यहां भी आया जाया करता था। आकाशवाणी के कार्यक्रम भी महीने में दो तीन बार प्रसारित होते रहते थे। इधर मैं व्यस्ततापूर्ण जीवन व्यतीत करता रहा और उधर काशी के साहित्य जगत में मेरी आचरण भ्रष्टता की कहानियां बटखारे लेकर सुनायी जाती रहती थीं जिससे मेरे घर के लोग चिन्तित और दुखी रहा करते थे। यहां तक कि मेरे पितृव्य गांव से चलकर बम्बई मेरा पता लगाने के लिए पहुंच गये थे और मेरी स्थिति से पूर्ण सन्तुष्ट होकर पुनः गांव लौट गये थे। इस प्रकार का खट्टा-मीठा जीवन जीते हुये, गीतों से लड़ते हुए आगे बढ़ता चल रहा था। बहिन के गवने के समय मेरा घर पहुंचना जरूरी था। इसकी भी चिन्ता अलग से थी।

इस बार की बम्बई यात्र में मैं प्री लान्सर के रूप में गीतकार की भूमिका अदा करतारहा। पैसों की दृष्टि से यद्यपि कि स्थिति ठीक नहीं थी किन्तु मुझ जैसा खाली हाथ व्यक्ति की जेब हमेशा गरम रहा करती थी और घर के काम-धन्धे में भरपूर हाथ बंटाते हुये बम्बई का अपना भी खर्च बर्च उठाते रहना कोई कम सफलता नहीं थी। मैंने फिल्मस्तान में मुखर्जी साहब से भेंट की ओर उनको गांव जाने का अपना विचार बताया। उन्होंने ‘नदिया के पार’ के गीतों का आधाहिसाब तुरन्त किया और आधा डेढ़ हजार रूपया मेरे गांव के पते पर भेज देने का वादा किया। अब मैं अपनेगांव था। इस समय बम्बई से बहुत बढ़िया केबिनेट साइ का हिजमास्टर्स वायस का ग्रामोफोन मेरे साथथा जिसमें डेढ़ सौ रेकार्ड्स थे। ‘साजन’ के भी गीतों के रेकार्ड्स थे। अन्य फिल्मों के भी जिनके गीत लिखे थे मैन और अपनी पसन्द के रेकार्ड्स मैं अपने साथ ले आया था। सबके लिए  



कपड़े और गवना के लिए भी अलग से साड़ियां, सन्दूक, छाता वगैरह जैसा कि परदेशी घर आते समय लाते हैं, लेकर मैं गांव पहुंचा। घर हंसी खुशी आनन्द से भर गया। जैसे ही है अपने आंगन में पहुंचा माँ और चाची के पैर छुए, देखा कि एक वर्ष भर की सुन्दर बच्ची ओसारे में दीवाल के साथ मांऊ मांऊ चल रही थी। मैंने पूछा-‘हई केकर लइका ह ?’ माँ और चाची ताली पीट कर हंस पड़ों-‘हई देख, अपनिए लड़का के चीन्हते नइखो।’ श्रीमती जी मन ही मन खुशी से पुलकित थी। दादा जी और चाचा जी (भइया जी) की खुशी का क्या ठिकाना ? छोटी बहिन तुन्नी जिसका गवना था। वह भी खुश थी कि उसके मोती बाबू विदाई के अवसर पर बम्बई से आये। बड़े भाई साहब गाजीपुर जिले में बासूपुर इण्टर कालेज के प्रिन्सिपल थे, वेसपरिवार वहाँ रहतेथे। छोटे भाई बीएचयू में आयुर्वेदिक कालेज में अध्ययनरत थे। पूरा परिवार हंसी खुशी से भरा-पूरा था। मेरे ज्येष्ठ पुत्र, मेरे बड़े भाई साहब के साथ गाजीपुर में रहते थे। वहाँ पांचवीं या छठवीं कक्षा में पढ़ते थे। गांव के भाई पट्टीदार लोग भी खुश थे। एक एक कर सभी लोग मुझसे मिलते गये। दो तीन महीने का समय लेकर मैं आया था। मुझे तुरन्त ही लौट जाना था। फिल्मस्तान वाला रूपया भी मुझे मनीआर्डर से मिल गया। उस समय डेढ़ हजार रूपये का होना बड़ी बात थी। मुझे इसके लिए सराहा गया, मेरी बड़ी प्रतिष्ठा बढ़ी। मेरा बम्बई मेरा रहना सार्थक समझ गया। जो कुछ झूठ फरेब मेरे बारे में फैलाया गया था सब अपने आप खतम हो गया। मैं एक लायक, कमाऊ और चमकदार पुत्र था। मेरे भाग्य से इर्ष्या करने वाले लोग भी कम नहीं थे। बहिन की विदाई हुई। रिश्तेदार लोग बहुत बड़े व्यक्ति थे, कुलीनता में, सम्पन्नता में रोबदाब धाक और प्रतिष्ठा में। मैं उनसे भी सम्मानित हुआ। मेरी सेवा से सभी प्रभावित और सन्तुष्ट हुये। मेरे ऊपर कोई फिल्मी रंग नहीं था। ‘तुम हमारे हो न हो’ ‘साजन’ का रेकार्ड चारों तरफ बज रहा था। ‘नदिया के पार’ में ‘मोरे राजा हो’ गीत के बारे में मुझे शंका थी कि यह गीत फिल्मस्तान वाले पर्दे पर आने नहीं देंगे। मैं अपने मित्र जंग बहादुर से मिलने लखनऊ गया। पता चला कि फिल्मस्तान की ‘शहीद’ फिल्म दिखलाई जा रही है। टिकट लेकर मैं भी अपने मित्र के साथ देखने गया। इण्टरवल में फिल्मस्तान की आने वाली फिल्म का टेलर दिखाया जा रहा था जिसमें दो चार अंश गीतों के भी थे। इसी में प्रथम बार देखा गया।

दिलीप कुमार और कामिनी कौशल ‘मोरे राजा हो ले चल नदिया के पार’ गीत गा रहे थे। मुझे तसल्ली हुई कि मेरा यह गीत कटा नहीं। जैसा मैंने गाया ठीक उसी धुन में यह गीत नदिया के पार में रखा गया है। अभी तक नदिया के पार के गीत बाजार में नहीं आए थे। मैं गाजीपुर जाकर श्री भागवत मिश्र और श्री हृदयेश जी से मिल आया था। काशी भी गया। शम्भुनाथ सिंह से मिला। उन्होंने मेरा बड़ा सम्मान किया। त्रिलोचन और नामवर सिंह भी काशी में ही थे।



सभी मुझसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए यद्यपि सन्देह की दृष्टि ही विशेष थी। गांव घर पर सभी कुछ ठीक ही था। अतएव बम्बई चलने का विचार हुआ। अपनी बच्ची से ममता इतनी धनी हो गई थी कि मेरा मन डिग गया और परदेस सेवन में मन कतराने लगा। जिस किसी तरह विश्वनाथ के साथ बम्बई के लिए रखाना हुआ और गीतों के संघर्ष के मोर्चे पर डंट गया। फुटकर गीत के चान्स ढूँढना और एक स्टूडियो से दूसरे स्टूडियो धूमना यही मेरा काम था। एक आध चान्स मिल भी जाते थे। किशोर साहू फिल्मस्तान से अलग हो चुके थे। उन्होंने अपना निज का प्रोडक्शन कायम किया था और एक फिल्म 'रिमझिम' नाम से शुरू कर दिया था। मुझसे एक गीत उन्होंने लिखवाया-

'हवा तूं उनसे जा के कहदे एक दीवाना आया है।'

तेरी सूरत पर मरने वाला एक परवाना आया है।'

संगीत खेमचन्द्र प्रकाश का था और इसे मुहम्मद रफी ने गाया था जिसको किशोर साहू ने स्वयं अदा किया था। फिल्मस्तान में इस समय मेरे लिए काम नहीं था। मि.मित्रा 'शबनम' नाम से एक फिल्म बनाने का इरादा कर रहे थे। पटकथा लिखी जा रही थी। एस.डी. बर्मन इसके संगीत निर्देशक थे। मि.मित्रा ने मुझे दो सिचुयेशन दिये गीत लिखने के लिए। इसमें एक गीतपसन्द भी कर लिया गया था। इस फिल्म में दिलीप कुमार, कामिनी कौशल नायक नायिका की भूमिका प्रस्तुत कर रहे थे। गीत जो पसन्द किया गया था, बहुत अच्छा था। कामिनी कौशल तो बहुत ही खुश थी इस गीत से। 'नदिया के पार' से उनसे मेरा परिचय हो चुका था। यह दिलीप और कामिनी के रोमान्स की चरमावस्था का समय था। दिलीप और कामिनी शरणार्थी के रूप में वर्मा से पलायन करते हुए जंगली और पहाड़ी इलाकों से गुजर रहे थे। कामिनी छोकरे के मेकअप में सबको आकृष्ट करती थी और देखने में बड़ी स्मार्ट, चुस्त, दुरुस्त लगती थी। रात गुजारने की स्थिति में उनका युगल गीत होना था जिसकी स्थायी पंक्ति मैंने इस प्रकार लिखी थी-

आवो जंगल में मंगल

मनायें चलें हम

तुम बजाए जावो बंशी

और गायें चलें हम।

कहीं से आए हैं औ

दूर कहीं जाना है

अलग हैं रास्ते

अलग अलग ठिकाना है





आवो दिल की दुनिया
लुटाए चलें हम
तुम बजाए जाओ बंसी

यहां भी कमर जलालाबादी मेरे रास्ते के कांटे साबित हुए। संवाद लेखक के रूप में जब उनसे मि. मित्रा ने बात चलाई तो वे गीत भी लिखने की शर्त पर राजी होने को कहने लगे। उनकी औकात थी और मेरी कोई औकात नहीं थी। इसलिए मैं ‘शबनम’ से कट गया, वे इससे सट गये। मेरे संघर्षों में एक तरफ मेरी कामयाबी चलती रही तो उसी के साथ समानान्तर मेरी बदकिस्मती भी चलती रही। न मैं संघर्ष में टूटा और न बदकिस्मती से मेरा साथ ही कभी छूटा। किस्मत का धनी तो मैं था ही नहीं। ‘शबनम’ वाला मेरा चान्स भी हाथ में आकर निकल गया। जैसा ‘समाव ‘को बदल डालो’ में प्रकाश पिक्चर्स में हुआ वैसा ही ‘शबनम’ में फिल्मस्तान में हुआ। दोनों ही बार कमर साहब ही मेरे आड़े आये। कमर साहब भी नेक और अच्छे आदमी थे। मेरा क्या ? मैं जैसा हूं वैसा था। मुझे यह मान लेना चाहिए कि किस्मत भी कोई चीज होती है। आदमी की जिन्दगी में। अगर गांव घर की समस्या को बाधक मानूं तो यह भी कोई मेरी बनायी चीज नहीं थी। इसकी भी रूपरेखा को भाग्य ने ही तो बनाया था। खैर, ऐसी हालत में फिर कम्पाउण्ड में गश्त करते हुए मि. मुखर्जी मुझसे मिले। वे मुझसे बोले-‘तुम्हारी वजह से ‘नदिया के पार’ फिल्म असफल हुई। और साड़े तीन लाख का मेरा बेड़ा गर्क हो गया, वरना दिलीप और कामिनी कौशल जैसे हीरो-हिरोइन, किशोर साहू जैसा निर्देशक और पटकथा लेखक, सी. रामचन जैसा संगीत निर्देशक, डेविड जैसा चुस्त आर्टिस्ट, फिल्मस्तान का बैनर, यह सब होते हुए फिल्म नाकामयाब हो जाये ? इसमें तुम्ही एकनये आदमी थे। तुम्हारी ही वजह से हमारी फिल्म मारी गयी। तुमसे अच्छा तो राजा मेंहदी अली खां है जिसके फिल्म ‘दो भाई’ के गीतों से मेरा बैंक बैलेन्स भर गया है।’ मैं सिर झुकाये उनकी बातें सुनता रहा। अपने ऊपर लगाये गये आरोपों से मैं क्षुब्ध और पीड़ित था। मैंने उनको नम्रता पूर्वक कहा-‘जी साहब, नाव तो जरूर ढूबी है मगर आपकी नहीं मेरे फिल्मी कैरियर की नाव ढूब गयी है। आप लोग तो नाव ढुबाने और पार लगाने के सिद्धहस्त खिलाड़ी हैं। जिस समय बाम्बे टाकीज से आप लोग अलग हुए और फिल्मस्तान लिमिटेड कायम हुआ उस समय आपकी पहली प्रतिष्ठित पिक्चर ‘चल चल रे नौजवान’ बनी श्री जिसमें अशोक कुमार हीरो और नसीम हिरोइन थी। गुलाम हैदर संगीत निर्देशक थे, प्रदीप जी गीतकार थे। डेविड और मुमताज जैसे सदाबहार कलाकार थे, आप स्वयं प्रबन्धक थे। उस जमाने में 15 लाख में पिक्चर का सौदा हुआ था। यह फिल्म दो दिन भी नहीं चली और ढेलों से उसके परदे फट गये।’ मि. मुखर्जी ने झटक कर कहा-‘चुप लम्पड़ा



रहो। बकवास बन्द करो।' यह कहते हुए वे अपने आफिस की तरफ चले गये। वास्तव में बात यह थी कि फिल्मस्तान में किशोर साहू की यह तीसरी पिक्चर जो सफलता का डंका पीटने वाली थी। उनकी दोनों पहली फिल्में 'सिन्दूर' और 'साजन' भी कामयाब हो चुकी थीं। तीसरी भी कामयाब होगी, यह सोचकर फिल्मस्तान सहज ईर्ष्या का शिकार हो चला। वह खुद नहीं चाहता था कि किशोर साहू की यह तीसरी फिल्म भी कामयाब हो। फिल्म 'नदिया के पार' श्रीनगर और कश्मीर में चल चुकीथी और अच्छा बिजनेस किया था उसने। लाहौर में भी उसने अच्छा बिजनेस किया था। इसकी खबरें फिल्मस्तान में जाती रहती थीं। सांय-सांय, फुस फुस की भाषा में कर्मचारीगण आफिस में बातकरते रहते थे। मुझको देखकर वे लोग चुप हो जाया करते थे। मैं कुछ जानने की कोशिश करता तो वेलोग टाल जाया करते थे। मेरा हमदर्द अब फिल्मस्तान में कोई नहीं रह गया था। मेंहदी अली खां ने अपना फ्लैट ले लिया था और फिल्मी बाजार में ऊँची दुकान लगाकर बैठ गया था। मैं लोकल ट्रेन से स्टूडियो, स्टूडियो से लोकल ट्रेन की सफर करता था और सड़कों पर चप्पलें घिसटता रहता था। मन में कविता गुनगुनाता रहता था। कभी जवाहर लाल शर्मा, कभी चित्रगुप्त, कभी एस.एन. त्रिपाठी, कभी प्रेम अदीब, कभी हवेवाला, कभी अवतार के यहां जाकर अपनी दास्तान सुनाता और एकआध फुटकरिहा गीत लिखकर अपना खर्च चलाता रहता था। 'काफिला', 'अमर आशा', 'इन्द्रासन' वगैरह में गीत दिए थे। ऐसे ही वक्त हंसराजबहल से मेरा झगड़ा हुआ था। पारो देवी की फिल्म 'किसी की याद' मुंशी प्रोडक्शन्स की फिल्म प्रेम अदीब की भी अपनी फिल्म कम्पनी थी। वे 'राम' विवाह 'बना रहे थे जिसमें शोभना समर्थ सीता की भूमिका में थीं। इसमें हमारे पांच छ: गीत रेकार्ड हुए थे। शंकर राव व्यास इसके संगीत निर्देशक थे। फिल्म 'सांवरिया' शक्ति सिनेमा हाउस में रिलीज होने वाली थी। झाली पब्लिसिटी बड़े धूमधाम से की गयी थी। सन्तोषी जी इसके निर्देशक थे। यह फिल्मस्तान की पिक्चर थी। रिलीज की तारीख भी पक्की हो गयी थी। मगर सेंसर बोर्ड ने इसका एक तिहाई आपत्तिजनक मानकर काट दिया था। लेहाजा उसको फिर से शूटिंग करनी पड़ गयी। लेकिन राक्सीमें कौन सी फिल्म के रिलीज के 'सांवरिया' के बदले बिना किसी विज्ञापन, बैनर, पोस्टर, पब्लिसिटी के उस बड़े में फिल्म 'नदिया के पार' को रिलीज कर दिया गया। मैं गया उसे देखने शाम वाले शो के समय जब भीड़ भाड़ ज्यादा होती है। किन्तु हाल में मुश्किल से पचास साठ आदमी बैठे होंगे। इण्टरवल में गीत दूसरे फिल्म के बज रहे थे। इस नजारे से मेरे सिवा और कोई दुखी नहीं था। मैं दूसरे दिन फिल्मस्तान पहुंचा तो बड़े बाबू मि. प्रेरा से पूछा कि इण्टरवल में नदिया के पार के रेकार्ड क्यों नहीं बजते हैं? प्रेरा साहब ने कहा कि क्या बजे जब रेकार्ड ही नहीं बने हैं तो? जब मैंने कारण जानना चाहा तो उसने कहा कि यह बात तो आप मि. मुखर्जी से पूछें।



मैंने मुखर्जी साहब से कहा तो उन्होंने कहा- तुम क्या बकते हो ? फिल्मस्तान की खराब से खराब फिल्मों के रेकार्ड बनते हैं। 'नदिया के पार' तो फिर भी अच्छी फिल्म है। कैसे मालूम हुआ तुम्हें ? ' मैंने कहा कि मि साहब प्रेरा कह रहे थे, उनसे पूछ लें। मि. मुखर्जी ने प्रेरा से पूछा तो प्रेरा ने कहा कि क्या जानूं साहब कि क्यों नहीं बने रेकार्ड ? नहीं बने हैं, यह जानता हूँ। मि. मुखर्जी ने बहुत दुख कहा कि चितेलकर आया हो तो उसे ऊपर भेज दो। चितेलकर साहब ऊपर मि मुखर्जी के आफिस में आये। पूछे जाने पर उन्होंने बतलाया प्ले बैक सिंगर्स खाली नहीं मिले इसलिए रेकार्ड नहीं बने। आदेश हुआ कि ट्रैक रेकार्डिंग से या जैसे भी हो महीने के भीतर 'नदिया के पार' के गीतों के रेकार्ड बन जाने चाहिए।

जब तक रेकार्ड बने तब तक 'नदिया के पार' फिल्म राक्सी सिनेमा हाल बाहर आ गयी। इस फिल्म के बम्बई में न चलने का असर यह हुआ कि मुझे इसकी क्रेडिट को कौन कहे केवल बदनामी ही मिली। गीतों के संघर्ष का मेरा मोर्चा विकट हो गया। मि. मुखर्जी की यह बात कि 'तुमसे अच्छा तो महदी अली खां हैं जिसके 'दो भाई' के गीतों से मेरा बैंक बैलेंस ऊपर चढ़ गया है।' तीर की तरह कलेज में चुभता रहता है। 'शबनम' फिल्म से मेरा वास्ता टूट ही चुका था कमर जलालावादी के कारण। कुछ दिनों तक फिल्मस्तान में बेकार आता जाता रहा मगर कोई काम नहीं मिला। ऐसे में एक दफा फिर मुखर्जी साहब से एक मुठभेड़ हो गई। उन्होंने मुझे देखकर पूछ दिया कि कहो मोती, कैसे घूम रहे हो ? मैंने उनसे कहा-'यूँ हो, साहब ! जा रहा हूँ दूसरी फिल्म कम्पनियों में भाग्य आजमाइश करने। मि. मुखर्जी ने कहा कहीं भी जाओ। तुम्हारे गाने अगर हिट होंगे तो यहीं फिल्मस्तान में यह कहते एक तरफ निकल गये स्टूडियो में और मैं स्टेशन पर लोकल ट्रेन का इन्तजार अरने लगा। मि मुखर्जी से यह मेरी आखिरी मुलाकात थी।

मैं प्रेम अदीब की फिल्म 'राम विवाह' में गाने लिख रहा था। तीन चार गीतों को रिकार्डिंग हो चुकी थी। उसकी शूटिंग हो रही थी। मैं यदा-कदा सेट पर भी जाया करता था। पैसों की तंगी रहा करती थी। कुछ न कुछ चान्स मिलते रहते थे। काम चल जाया करता था। प्रेम अदीब अन्धेरी पश्चिमी में रहते थे। अच्छा-खासा बंगला था। अहाते के भीतर फूल पत्तों पेड़ों के बीच। उनसे मिलने और पैसों के तकाने में मैं शायः उनके यहां जाया करता था। एक दिन सात साढ़े सात बजे सन्ध्या समय में उनके मकान पर पहुंचा तो पता चला वे घर पर नहीं हैं। उनकी मेम साहब घर से बाहर आई मैंने पूछा-भाई साहब नहीं हैं क्या ? उन्होंने कहा-आप लोग भाई साहब तो कहते लेकिन भाई साहब के लिए कुछ करते नहीं। क्यों नहीं जहां तहां से उन्हें कुछ चान्सेज दिलवाते। घर में तरह तरह की तंगी रहा करती है। कब तक इस तरह चलता रहेगा। मुझे यह सुनकर हार्दिक क्लेश हुआ।



मैंने सोचा-कार, बंगला, प्रेम अदीब के हाथ में हीरे की अंगूठी, गले में सोने का चौना भाभी जी के शरीर पर भी आभूषण भाई साहब प्रोड्यूसर हैं। कई फिल्में बनी हैं। इस समय एक बड़ी पिक्चर 'राम 'विवाह' बना रहे हैं और भाभी जी आर्थिक तंगी की ऐसी ऐसी बातें कर रही हैं। मेरा बहुत दुखी हुआ। फिल्मी दुनिया के भीतर की हकीकतों की सीढ़ियां हैं, कई मंजिलें हैं, कई उतार हैं कई चढ़ाव हैं। कहाँ आकर भटक रहा हूँ मैं इस दुनिया में जो खुद तबाह है कहाँ तक किसी अन्य का सहारा बनेगा ? प्रेम अदीब बहुत ही नेक और सज्जन व्यक्ति थे। उनके यहाँ मेरा हिसाब बाकी नहीं रहा। 'राम विवाह' से भी उन्हें फायदा नहीं हुआ।

मेरी मृग दौड़ जारी थी। एक अवतार के साथ, एक विश्वनाथ मेरे साथ मलाड़ अवतार रहते थे, जोगेश्वरी में मेरे मित्र विश्वनाथ और अन्धेरी में मैं रहता था। गीत लिखने के फुटकर चान्स मिल जाया करते थे। इस समय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का विशेष अधिवेशन निराला जी की अध्यक्षता में आयोजित था। मेरीन लाइन्स पर मैं अपने सहयोगी मित्रों के साथ अधिवेशन में जाता और हिन्दी साहित्य जगत की विभूतियों के दर्शन करता। इस अवसर पर आयोजित कवि सम्मेलन में बहुत कविगण उम्मीद थी प्रदीप जी इसमें सम्मिलित हों किन्तु वे नहीं आये। कुछ देर रहकर सम्मेलन से लौट रहा था, बड़ा प्रसन्न था। धोती, कुर्ता जैकेट, चादर और मुँह सुलगती हुई सिगरेट। एक गुजराती सज्जन, अधेड़ उम्र के सामने से चले आ रहे थे। उनको दृष्टि मुझ पर पड़ी और उन्होंने मुझे रोककर कहा- श्रीमानजी ही भव्य और भद्र है। काश। आपके मुँह में यह सिगरेट नहीं होती। मैं हुआ और सुलगती सिगरेट को बुझाकर कहीं फेंक दिया। उनकी आत करता हुआ गम्भीर मन से साथियों के साथ आगे बढ़ा दस बारह दिन बना रहा किन्तु फिर वही सिगरेट और वही मैं, यह क्रम चलता रहा।

सम्मेलन के अवसर पर मैंने 'एक शायर' जो उर्दू में है और लम्बी है छपवा कर सम्मेलन में उपस्थित कुछ साहित्यिक कोट पुस्तिका निराला जी को मैंने अर्पित की थी। बम्बई के एक साहित्यकार और बन्धु के मकान पर बाहर से आये कवियों के सम्मान में कवि गोष्ठी आयोजित की जिसमें मैं भी सम्मिलित था। मुझसे आग्रह किया गया एक कविता सुनाने के लिए मैंने उर्दू में एक गजल लिखी थी- 'तमन्ना कौन करे' की बहर पर। इसी को सुनाया। स्वर ने साथ नहीं दिया और यह नज़्म जमी नहीं। इस पर संचालक महोदय ने एक टिप्पणी की कि मोती जी 'कल्वर्ड पर्ल' हैं। यह फब्ती सुनकर कुछ हंस पड़े। मुझे 'कल्वर्ड पर्ल' का अर्थ नहीं मालूम था। मैं सोचने लगा कियह कौन सा अपशब्द है और क्या है इसका अर्थ कि मैं उपहास का पात्र बना। इस कवि में श्री भगवती चरण वर्मा और श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा भी थीं। बाद में मालूम हुआ कि



‘कल्वर्ड पर्ल’ का अर्थ होता है नकली मोती। संचालक महोदय का नाम था श्रीनिधि द्विवेदी। मुझे उनकी इस टिप्पणी की रोशनी में अपनी व्याख्या करनी पड़ गयी और आज तक मैं अपने को तौलता रहा हूं कि मैं असली हूं या नकली। यह नज्म मैंने सुनाई थी मि. अशोक कुमार को जिनके साथ उर्दू के शायर तनवीर नकवी भी रहे। जिनकी कौव्वाली ‘आहें न भरी शिकवे न किए कुछ भी न जबा काम लिया’ धूम मचाये हुए थी, सुनाई थी। अशोक कुमार साहब फिल्म ‘महल’ बना रहे थे जिसमें नकवी साहब की एक गजल है-

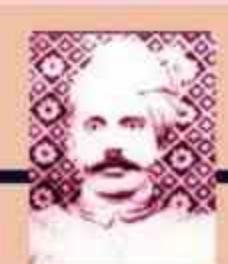
‘जीने की दुआयें क्यों मांगूं
मरने की तमन्ना कौन करे
या यह दुनिया या वह दुनिया,
फिर खाहिशे दुनिया कौन करे।

यह गजल रेकार्ड की जा चुकी थी। ‘मेरी तमन्ना कौन करे’ नम इस गजल से बिल्कुल भिन्न थी। मेरी गजल की उन्होंने तारीफ की थी। आकाशवाणी के हिन्दी विभाग के प्रोड्यूसर एक मुसलिमअदीब थे। मैंने उनको भी सुनायी थी यह गजल जब मैंने यह मिसरा उन्हें सुनाया कि-

हर गुल में हैं शबनम के कतरे
हर आंख में आँसू की बूँदें
हर लब पे है गम का अफसाना
कहने की तमन्ना कौन करे।

तो वे बोल उठे कि इसे लिखकर मैं नकवी साहब के पास भेज दे रहा हूं क्योंकि उनकी नज्म में इस वजन का कोई मिसरा है नहीं। नकवी साहब की ही मशहूर नज्म-ऐसी शिकस्ता किश्ती से चलने की तमन्ना कौन करे’ के पैमाने पर ‘तमन्ना कौन करे’ को उनवान बनाकर मैंने अपनी गजल को लिखा था। मेरी इस गजल की बहुत तारीफ हुई। उर्दू के अच्छे अच्छे शुअरा और अदब ओ फन के माहिर इल्मयाप्ता हस्तियों ने जब इसकी दाद दी है तब भी श्रीमान श्री निधि द्विवेदी की यह फब्ती मोती जी ‘कल्वर्ड पर्ल’ हैं कलेजे में चुभी रह गयी। इसी तरह एक नज्म और है मेरी ‘अलविदा’। वर्धा के अपने दोस्त से जुदा होने पर यह नज्म मैंने रेल में लिखी थी। मैंने इसमें एक जगह ‘समय’ का इस्तेमाल कर दिया है जिसको सुनकर एक पंजाबी सज्जन ने मुझे टोक दिया था कि आपने उर्दू पढ़ी है या नहीं। मैंने कहा- नहीं। उन्होंने कहा कि मुझे मालूम हो गया था कि अगर आपने उर्दूपढ़ी होती तो ‘समय’ का इस्तेमाल न करके और ढंग से लिखा होता। अब न वो महाशय हैं और न वह जमाना। अब तो उर्दू हिन्दी में और हिन्दी उर्दू में हिलोरें ले रही है। किनारे टूट लम्पड़ा





गये हैं। गलबहियों का लुत्फ उठाया जा रहा है। ऐसे में वे कूदमगज नहीं हैं तो बहुत अच्छा है क्योंकि मेरी 'अलविदा' नज्म एक ऐसी नज्म है जो बुझे हुए चिराग को भी जला देती है। मैंने इस तरह के वाक्यात के जाहिर असरात देखे हैं। यह सब मुंबा देवी की मेहरबानी है। मैंने बम्बई में बेशक भाड़ झोंका है मगर यह काम बिल्कुल बेसूद नहीं गया है। सन् 1949 के दौरान बम्बई में मेरी यही उपलब्धि है।



मैं मालवीय ब्राह्मण हूँ। देवरिया जिले में मेरे पूर्वजों का एक इतिहास है। महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय ने प्रमाणित कर दिया है कि यजुर्वेदीय ब्राह्मणों का मूल निवास मालवा था। इसीलिए उन्होंने अपने नाम के साथ मालवीय उपाधि धारण किया। अपने जीवन काल में उन्होंने मौना गढ़वा में इसके लिए एक विराट सभा बुलवाकर इस तथ्य को सर्वसाधरण के सम्मुख उजागर किया था। पैना ग्राम के पूरब बठ्ठा तक का भूमिखण्ड मौना गढ़वा केन्द्र से शासित होता था। मल्ल गणराज्य के अन्तर्गत (मझौली राज्य) के अधीन मौना में गढ़ था जो उपाध्याय वंशीय सामन्त के अधिकार में था। कालक्रम में यही मौना गढ़ विभक्त होकर बहमनी राजवंश की भांति बढ़ौना, देउबारी, बरेजी, अंदिला और मौना में विभक्त हो गया। ये सभी पांच गांव उपाध्याय वंशीय मालवीय ब्राह्मणों के अधिकार में थे जो नवापारी कहे जाने लगे। मौना गढ़ में सदियों पूर्व कउड़ी बाबा अपनेदो भाइयों के साथ कसिली नाले के पूरब के भूमिखण्ड पर काविज हो गये।

कउड़ी बाबा के पुत्रा थे सीवन बाबा जिनकी सन्तति आज तीन प्रमुख वर्गों में विभक्त है। कउड़ी बाबा के दो भाइयों की सन्ताति में दो पीढ़ियां आज भी वर्तमान हैं जिनमें एक से गोखुला बाबा, दुखहरन बाबा और सुखेसर बाबा की सन्तानें हैं और दूसरी से रामअवतार बाबा भागीरथी बाबा और शिवप्रसाद बाबा का परिवार है। उपरोक्त तीन भाइयों के सन्ताति के सम्पुट का नाम है बरेजी जो बरेजी आबगीर के नाम से विख्यात है। यह संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है कउड़ी बाबा के दो भाइयों की पीढ़ी का। अब स्वयं कउड़ी बाबा की सन्ताति के विकास का इतिहास प्रस्तुत है।

कउड़ी बाबा के पुत्र सीवन बाबा की सन्ताति

१-अजायब बाबा २-धुरबल बाबा ३-भोला बाबा ४-प्रयाग बाबा ५-परताप बाबा ६-मथुरा बाबा

इनमें अजायब बाबा और परताप बाबा के कोई सन्तान नहीं थी। धुरबल बाबा और मथुरा बाबा की सन्ताति बरेजी आबगीर में फूल-फल रही है जो तीन घरानों या पट्टियों में विभक्त है, यथा दक्खिन पट्टी, धुरबल बाबा, बिचली पट्टी मथुरा बाबा और उत्तर पट्टी भोला बाबा। प्रयाग बाबा का विवाह बरईपट्टी में हुआ था, जिनके दो पुत्र थे-टीमल और तिलक। टीमल बाबा के कोई सन्तान नहीं थी और तिलक बाबा, जिनका विवाह महदेवा में हुआ था उनके पुत्र थे छेदी। छेदी बाबा जिला बस्ती के महदेवा में अपने नवरसा पर जाकर बस गये।

धुरबल बाबा
इनके दो पुत्र थे।

१-सदन बाबा

सदन बाबा के दो पुत्र

१-जोखन बाबा २-महावीर

२-घनश्याम बाबा

घनश्याम बाबा के दो पुत्र

१-नगेसर २-अभिलाख

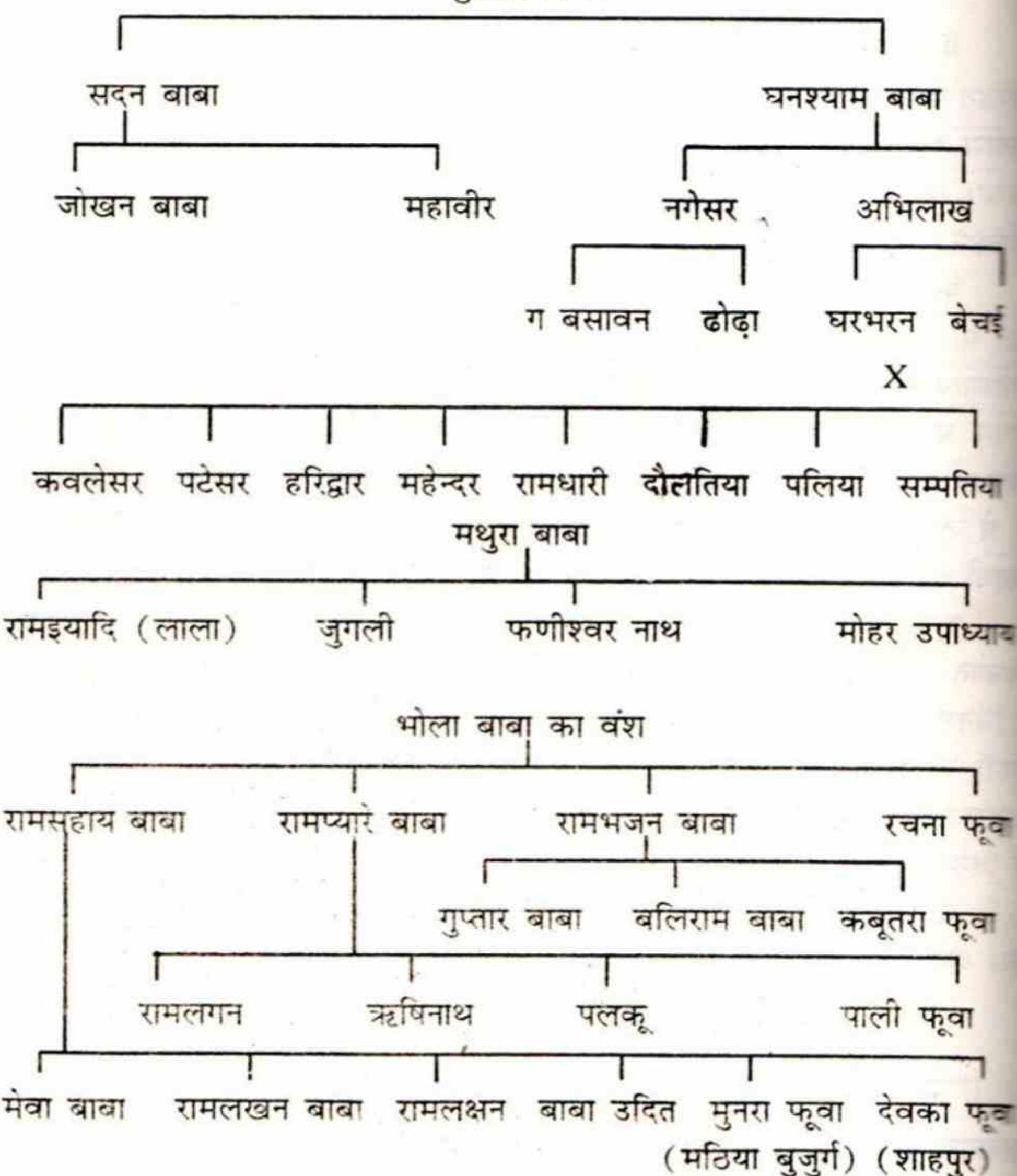
नगेसर के दो पुत्र

१-बसावन २-छोड़ा





धुरबल बाबा





रामसहाय बाबा के दूसरे पुत्र थे-रामलखन उपाध्याय जिनके पुत्र थे रामसुन्दर उपाध्याय, देवनारायण उपाध्याय, जयनारायण उपाध्याय, जगन्नाथ उपाध्याय और पुत्री थी-बबूनी फुवा। रामसुन्दर उपाध्याय का विवाह गड़वार में अर्जुन चौबे की पुत्री से हुआ था, जिनके दो पुत्र-हेमनारायण और प्रेमनारायण के अलावे मुरतिया, सोनिया, रुधिया नाम की तीन कन्याएँ पैदा हुईं, जो क्रमशः भौजमपुर, छपरा और धनगढ़ी में व्याही गयीं। हेमनारायण और प्रेमनारायण का विवाह पाठक पिपरा के लाल बहादुर पाठक की दो पुत्रियों से हुआ। रामसहाय बाबा के तीसरे पुत्र रामलछन उपाध्याय की पीढ़ी की कथा अब प्रस्तुत है। मेरी कल्पना में वह कारण प्रत्यक्ष हो उठा है जिस हेतु बरेजी के मालवीय वंश के मानसरोवर में मैं डूबता उतराता उस कमलिनी के पास तक पहुंचनेके प्रयत्न में हाथ-पांवमारता हुवा आगे बढ़ता जा रहा हूँ जो हँसती मुस्कराती मुझसे दूर और अति दूर हटती जा रही है जबकि यह निश्चित है कि उससे हमारा तादात्म्य है। रामलक्ष्मन उपाध्याय का विवाह ग्राम चकरवा के मुनिलाल तिवारी के घर में सुघरा देवी से हुआ था-जिनके दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुईं। ज्येष्ठ पुत्र राधाकृष्ण उपाध्याय, दूसरे पुत्र सरयू नारायण उपाध्याय और कन्या रामसखी थी। रामलक्ष्मन उपाध्याय को चाचा उनकी पत्नी को चाची, राधाकृष्ण उपाध्याय को अमीन साहब और दादाजी, सरयू नारायण उपाध्याय को गांव के लोग भइया कहते थे। राधाकृष्ण उपाध्याय का पहला विवाह मनसुरवा हुआ था जिससे एक पुत्र जगत नारायण हुवे किन्तु पहले माँ और बाद में 14 वर्ष की उम्र में जगतनारायण की मृत्यु हो गयी। राधाकृष्ण उपाध्याय का दूसरा विवाह ग्राम नेपुरा में पण्डित राजाराम पाण्डेय की पुत्री कौशिल्या देवी से हुआ। कौशिल्या देवी की दो बहिनें थीं जिनमें एक बढ़ौना पण्डित रामनन्दन उपाध्याय और मौना के पण्डित महादेव उपाध्याय से व्याही गयी थीं। सरयू नारायण उपाध्याय का विवाह मनसुरवा के पण्डित तेज नारायण दूबे की कन्या फूलमती देवी से हुआ था और रामसखी देवी का विवाह ग्राम महुजा के उच्च और कुलीन घराने में सुदीना पांडे के पुत्र नन्दकिशोर पांडे से हुआ था जिनके पुत्र शिवनारायण पाण्डेय जो इन पंक्तियों के लेखक के फुफेरे भाई लगते हैं वृद्ध होकर आज भी वर्तमान हैं। पण्डित राधाकृष्ण उपाध्याय के तीन पुत्र और दो पुत्रियां हुईं। जगदीश नारायण उपाध्याय मालवीय, मोतीलाल उपाध्याय मोती बीए, परमानन्द उपाध्याय डॉक्टर, शान्ति देवी और कान्ति देवी।

जगदीश नारायण उपाध्याय का विवाह ग्रामनैनी के पण्डित शीतल त्रिगुनायत की कन्या धाना देवी से हुआ जिनके तीन पुत्र और एक कन्या हुई यथा- सतीश चन्द्र उपाध्याय हरिश्चन्द्र उपाध्याय, अशोक चन्द्र उपाध्याय दानी, गीता। मेरा मोती बीए विवाह गोपालगंज जिला ग्राम-जादोपुर दुबानके पं राजकुमार दूबे की पुत्री लक्ष्मी देवी से हुआ जिनसे तीन पुत्र और दो कन्यायें हुईं यथा





जवाहर लाल उपाध्याय (इन्जीनियर), भालचन्द्र उपाध्याय, अंजनी कुमार उपाध्याय, उर्मिला सुच्ची और शारदा। जवाहर लाल उपाध्याय का विवाह नोनया ग्राम के पं कपिलदेव दूबे की कन्या सुनयना से, भालचन्द्र उपाध्याय का विवाह गड़वार के पं रामनगीना वाजपेयी की पुत्री शान्ति देवी से, उर्मिला का विवाह नरही के पं महदेव दूबे मुख्तार साहब के पुत्र ध्रुवजी द्विवेदी से, शारदा का विवाह चक्रवा के पं रामकृपाल त्रिपाठी के पुत्र रमेश त्रिपाठी से और अंजनी कुमार का विवाह नैनी के पण्डित ठाकुर त्रिगुणायत, की कन्या प्रमिला से हुआ। डॉक्टर परमानन्द उपाध्याय का विवाह मुजफ्फरपुर शहर के मुहल्ला ब्राह्मणी टोली के पंडित केदार नाथ दूबे की पुत्री शान्ति देवी से हुआ जिनसे तीन पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई यथा-रवीन्द्र नाथ उपाध्याय, सुधीर कुमार उपाध्याय, सुशील कुमार उपाध्याय और सन्ध्या। रवीन्द्रनाथ उपाध्याय (ए.डी.एम) का विवाह सबरापुर के पण्डित सुभाष की पुत्री सुकन्या से, सुधीर कुमार का विवाह ग्राम नैनी के पं ठाकुर त्रिगुणायत की पुत्री निर्मला से, सुशील कुमार का विवाह ग्राम नैनी के पं ठाकुर त्रिगुणायत की पुत्री इन्दू से और सन्ध्या का विवाह ग्राम महुजा के तप नारायण पाण्डेय के पुत्र राघवेन्द्र पाण्डेय से हुआ जो इन्जीनियरिंग के छात्र हैं। पण्डित सरयू नारायण उपाध्याय केदो पुत्र और एक पुत्री हुई, यथा-नित्यानन्द उपाध्याय, कैलाश चन्द्र उपाध्याय और विद्यावती। नित्यानन्द उपाध्याय का विवाह शीतलपुर के पं अवध विहारी उपाध्याय की पुत्री देवकीसे हुआ जिनसे प्रमोद, प्रदीप और लोकेश नाम के तीन पुत्र और मंजू नाम की कन्या उत्पन्न हुई। कैलाश की असामयिक मृत्यु हो गयी जबकि वे ओवरसीयर कोर्स के अन्तिम वर्ष के छात्र थे। नित्यानन्द उपाध्याय शान्त प्रकृति के हैं और कताई बुनाई के सेवा कार्य में मनोयोग से संलग्न हैं।

जिस महान कुल के हम अभिन्न अंग हैं उसका यह केवल एक नजरी नक्शा है। इसमें त्रुटियां सम्भव हैं क्योंकि प्रमाणस्वरूप कुछउन ग्राम वृद्धों के वचन हैं जिन्होंने पुरानीपीढ़ियों को जिया है, देखा है और सुना है जैसे पण्डित सूर्यबली उपाध्याय, पण्डित सीताराम उपाध्याय, बबून जी उपाध्याय, पवहारी उपाध्याय, राधा उपाध्याय। हम इन सबके कृतज्ञ हैं। यह लेख अधूरा है। विवरण त्रुटिपूर्ण हो सकता है किन्तु मजबूरी यह है कि चार सौ वर्ष पुराना इतिहास जबानी, बिनाकिसी पुष्ट और ठोस आधार के कैसे हो सकता है ? इससे हमारा ध्यान इस ओर आकृष्ट होता है कि अपने जीवन भर के खटर-पटर के हुजूम में हम कुछ क्षण अपने पुरखों और पुरनियों की पंक्तिमें आ खड़े होते हैं और हमारा ध्यान अपने मूल की ओर जाता है। है। हमें अपने पुरखों का आशीर्वाद प्राप्त होता है। यदि इस अधूरे कथकचरे निबन्ध से इतना भी हो सका तो मैं यह अपना सौभाग्य समझता हूँ और अपने भतीजे अश्वनी कुमार को ऐसे ऐसे पुनीत कार्यों में लगे रहने की मंगल कामना प्रदान करता हूँ। जो बोले वो निहाल, जो करे वो कमाल। हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना अच्छी बात नहीं है।



बरेजी ग्राम में मालवीय ब्राह्मण वंश के साथ ही सरयूपारी मिश्र ब्राह्मण वंश का भी इतिहास युगों से जुड़ा है। साथ ही यादव वंश, आभीर वंश और दुसाध वंश, गोंड वंश, गुप्ता वंश तथा विश्वकर्मा वंश भी बरेजी गांव की आबोहवा में फूल और फल रहे हैं तथा गांव की मर्यादा, गांव की सभ्यता, गांव की संस्कृति एवं ग्राम के व्यवसाय धन्धों में मूल्यवान योगदान करते रहे हैं। इनका भी इतिहास है जिस पर हमारा ध्यान जाना चाहिए। बहुत सम्भव है हमारे गांव की नई पीढ़ी के किसी युवक का ध्यान इस ओर जाए और पूरे गांव का वृहद इतिहास लिखा जाने लगे। हमारे गांव का नाम बरेजी है। बहुत पुराना नाम है यह। अब इसका नाम हो गया है बरेजी आबगीर। आलमगीर की तरह आबगीर भी एक शब्द है। आलमगीर का अर्थ है दुनिया का मालिक आबगीर का अर्थ है पानी का मालिक। ऐसा ताल और रेती तथा सरयू नदी की समीपता के कारण है। मतलब कि बरेजी एक पानीदार गांव है। लेकिन नये जमाने का असर बरेजी पर भी पड़ा है और यह बहुत कुछ बदला भी है। पहले गांव में सामन्तशाही चलती थी। इस छोटे से गांव पर विद्या देवी की कृपा है और लक्ष्मी जी की भी। गांव का आराजी रकबा कम है। सामान्य जाति के परिवारों की यहां बहुलता है। बरेजी कानून, शासन, पुलिस प्रशासन, कृषि विभाग, शिक्षा, जल निगम, चिकित्सा व्यवसाय, खेलकूद एवं शरीर विज्ञान कला एवं संस्कृति, धर्म संस्कार, कर्मकाण्ड, इन्जीनियरिंग, वन विभाग तथा साहित्य के क्षेत्रों में यशस्वी और प्रभावशाली व्यक्तियों से भरापूरा है। राष्ट्रीयता की भावना से यह छोटा सा गांव ओतप्रोत है। राजनीति की दुनिया से यह पता नहीं क्यों हमेशा से अलग रहता आया है और लोकतंत्र की भावभूमि पर विचरण करता हुआ अपने स्वतंत्र मत का पूर्ण उपयोग करता है। काल के अन्तराल एवं चक्रबन्दी के कारण इसके पुराने स्वरूप में कुछ नयापन जरूर आया है जिसमें पुराना बरेजी कुछ गुम हो गया है। नया बरेजी, पुराने बरेजी की तलाश में प्रायः व्यग्र देखा जाता है किन्तु प्रगति और विकास के कार्य में किसी प्रकार का शैथिल्य नहीं आने पाता। थोड़ा बहुत बाताकहीं न होती रहे आपस में तो जड़ता और एकरसता आ जाती है जिससे विकास के क्रम में गत्यावरोध होने लगता है। विकास का संघर्षसे चोली दामन का साथ है। एक मुक्तक इस सिलसिले में प्रस्तुत करने का लोभ हो आया है-

आज गाने को जी चाहता
है चमन में बहार आ गयी
एक दिलकश हसीं दास्तां
याद बेअखिलयार आ गयी।

यह हसीन और दिलकश दास्तां और किसी बात की नहीं अपने कूँड़, ढेकुल, रसरी, बरहा, हत्था, अंखइनि, पचखा, दउरी, दउरा, परई, दीया, ढकनी, धुधुका, घांटी, पगहा, खूंटा, नाद,





बाग-बगीचे, पोखरे, डगरि वगैरह की है और टीसता रहता है मन, ढूँढ़ती रहती हैं आंखें बहार के, प्रगति के, विकास के इस नये बरेजी में (बरेजी आबगीर में) अपने पुराने बरेजी को। नौरंगा और महुआबारी से पूछता हूँ कि पांडे की बारी, खोंचा की बारी, गोखुला बाबा की बारी कहां चली गयी? धोधिलवा महुवा कहां गया, रसीली रहिलिया क्या हुई? जब कोई उत्तर नहीं मिलता तो लपक कर जाता हूँ धोबही और चौपटही। धोबही की रक्षा में तत्पर किनारे पर मुस्तैदी से खड़े दो वीर बांकुरे उस अंगरक्षक आम के पेड़ वहां दिखाई नहीं पड़ते। हाय, क्या उसकी भी वीरगति हो गयी? दर्द लिए घूम पड़ता हूँ गांव की ओर अपनी कविता की एक पंक्ति गुनगुनाते हुवे- ‘भोर भई और पंछी बोले, चलो गांव की ओर’ तथा-

हमारा हरा भरा है गांव
युग युग जीए पीपर-पाकड़
यह बरगद की छांव
हमारा हरा भरा है गांव ।

मगर कहां है वह युग युग जीने वाला पकड़ी का पेड़ और कहां है गड़ही के किनारे कालीचरन, लवटू, पलटन और बालीचरन के पुराने घर के सामने के वे दो पेड़ बरगद के जिनकी छांह में मेला लगता था, बरात टिकती थी, नाच गाने होते थे। वहप्यारी गड़ही भी तो नहीं है जवाब देने को। डीह पर का, गांव का वह दुलरुवा बरगद अब कहां है जिसकादूध निकालनिकाल कर अपनी रोगी आंखों में लोग डाला करते थे और जिससे फुल्ली, मांड़ा तथा रतौन्ही का इलाज किया करते थे। अब वे नहीं हमारे पुराने साथी। उनकी तलाश बेकार है। बेकार है ढेबुहवा पीपर को ढूँढ़ना और बेकार है सिसकते दोगला पीपर से पूछना! कोई उत्तर नहीं मिलेगा, नहीं मिलेगा। बरेजी मेरी जन्मभूमि है। मेरा पुराना घर आज भी वर्तमान है किन्तु बाप-दादों की यह कीर्ति अब जीर्णावस्था में है। इसे ऐसा होना ही था संयुक्तावस्था में वियुक्तावस्था का फल इसी तरह का होता है। मेरी धर्मपत्नी इसी घर में बहू बनकर आई थीं, बरहज में मेरे साथ पैंतीस वर्षों तक रही थीं और काशी में इनका स्वर्गवास हुआ। न तो अब मेरी धर्मपत्नी मुझे फिर मिलेंगी और अब न तो यह पुराना घर मेरे द्वारा फिर आबाद किया जा सकेगा।

मेरे गांव में तीन सार्वजनिक स्थल थे। तीनों स्थानों पर कुछखुली जमीन थी और बरगद के पेड़ों की सुखदायिनी छाया थी। गांव के लोग समय समय पर यहां एकत्रा हो जाया करते थे। पहला स्थान था डीह का, दूसरा स्थान था लवटू-कालीचरन यादव के पुराने मकान के सामने का, तीसरा स्थान था जहू यादव के घर के उत्तर दक्षिण और पूरब की खुली जमीन का



जहां खरबूजे बिकते, सिरकापट्टी बिकती, मनिहारिने और चूड़िहारिन बैठतीं, कभी नाच होता कभी चिकका होता कभी गपाष्टक होते। लोग आराम करते। हमारे गांव में काली माई, सती माई, डीह बाबा, जाखनी माई, शिउवा थान आदि पूजा के स्थान हैं जो आज भी वर्तमान हैं। शिउवा स्थानमें एक पेड़ है जिसको लोग 'पतजीव' बताते हैं। ऐसा पेड़ मैं किसी गांव में नहीं देखता। इसके फल छोटे छोटे होते हैं जिसको सूई से छेद कर और डोरा में गूंथ कर लाल, पीले रंग में रंग कर हम माला बनाकर बचपन में पहना करते थे। तेलिया कला में जहां मिडिल स्कूल ;पुरानाढ्व था वहां एक गाभ का पेड़ था जो अब भी मौजूद है। उसका पफल पकने पर केसर के रंग की लालिमा लिए होता था। आज तो बात ही कुछ और है। पक्की सड़कों का नजारा देखते ही बनता है जिस पर से सैकड़ों टैक्सियां, मोटरसाइकिलें, ट्रकें धुंआधार अप-डाउन करतीरहती हैं। उसजमाने में महीनों वर्षों में शायद ही कोई मोटरगाड़ी पास होती रही हो। अगर किसी ऐसी गाड़ी के आने की आवाज सुन ली जाती रही तो सारा गांव रास्ते पर निकल आता था और उसे तब तक देखता रहता था जब तक वह आंख से ओझल नहीं हो जाती थी। आज तो फेजां ही और है। तमाम तरह की गाड़ियों के आने जानेका रेला हमेशा लगा रहता है। स्कूली बच्चे इन पर सवार होकर रोज पढ़ने जाते हैं और पढ़कर आराम से शाम तक लौट आते हैं। यह है तरक्की। तब आटा घर में औरतें जाँत पर पीस लेती थीं, गीत गाकर झूम झूम कर। अब तो गांव में ही दो दो आंटे की चकियांबिजली से चल रही हैं। औरतोंको आराम मिल गया है। बिजली गांव घर की देहली तक पहुंच गयी है। गांव में उत्तर से दक्खिन तक लम्बी सड़क खड़ंजे के शिल्प से बनवा दी गयी है जिस पर मोटर गाड़ियां गांव के आर पार आती जाती हैं। गांव के भीतर भी खड़ंजा कुछ हो चुका है कुछ बाकी है होने को। बरेजी बदल रहा है। नयी भीत उठ रही है, पुरानी भीत गिर रही है। निर्माण काल की यह संक्रमणावस्था है। अब बरेजी मालदार हो चुका है। पानीदार होने के कारण इसकी ग्रामसभा आबगीर होने के नाते सुसम्पन्न है।

बरेजी के पुरखों-पुरनियों का आशीर्वाद फलित होते देखकर कौन ऐसा बरेजी निवासी होगा जो हृदय से प्रफुल्लित नहीं हो उठेगा। जिस गांव में मिल जुलकर छान्ह उठाने की संस्कृति रही हो, एक साथ मिलकर सरयू घाट तक कांधे पर अर्थी पहुंचायी जाती हो उसी गांव में हम मिलजुल कर विकास की सुख समृद्धि की दिशा में अब अपना चरण नहीं बढ़ा रहे हैं।